उत्तर प्रदेश में भूमि सुधार और कुलक वर्ग

चौधरी चरण सिंह

उत्तर प्रदेश में भूमि सुधार
और
कुलक वर्ग

उत्तर प्रदेश में भूमि सुधार
और
कुलक वर्ग

चौधरी चरण सिंह

किसान ट्रस्ट

अनुवादक :
भारती भक्त

© किसान ट्रस्ट

मूल्य : 30 रुपये

प्रकाशक :
ए० वी० सेतुमाधवन
किसान ट्रस्ट, एम-1, मैग्नम हाउस-II,
कम्युनिटी सेन्टर, कर्मपुरा,
नई दिल्ली-110015

मुद्रक :
पवन प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

प्रकाशक की ओर से

'लैण्ड रिफॉर्म्स इन यू० पी० एण्ड दि कुलक्स' नामक पुस्तक चौधरी चरण सिंह ने 'सर्वनाम शैली' में लिखी है। इसमें राजस्व मंत्री चौधरी चरण सिंह द्वारा उत्तर प्रदेश में किये गये भूमि-सुधारों के विषय में लेखक चौधरी चरण सिंह ने विस्तृत जानकारी दी है। कुछ राजनेताओं-पत्रकारों द्वारा चौधरी चरण सिंह पर कुलक वर्ग (धनी किसानों) का पक्षधर होने का आरोप लगाया जाता रहा है, परन्तु यह आरोप कितना निराधार है, इसकी जानकारी इस पुस्तक में उल्लेखित उनके द्वारा किये गये भूमि सुधारों से स्वतः ही मिल जाती है। वस्तुतः उनके द्वारा खेतिहर मजदूरों और छोटे किसानों के पक्ष में अनवरत तीन दशकों (1936-1966) तक किये गये संघर्ष के विषय में जानकर पूर्वाग्रह-मुक्त कोई भी व्यक्ति यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि चौधरी साहब को 'कुलकों का हिमायती' कहना उनके साथ कितनी बड़ी नाइंसाफी है।

इसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए किसान ट्रस्ट 1986 में अंग्रेजी में प्रकाशित उक्त पुस्तक का हिन्दी रूपान्तरण प्रस्तुत कर रहा है। उत्तर प्रदेश में भूमि-सुधारों को लेकर चौधरी साहब पर धनी किसानों का पक्षधर होने के जो आरोप लगाये गये हैं, उनको निराधार प्रमाणित करने में यह पुस्तक सहायक सिद्ध होगी, ऐसा किसान ट्रस्ट का विश्वास है।

आमुख

भारत को ब्रिटिश हुकूमत से 'जमींदारी' नामक एक सामंती या जमींदार-रैय्यत वाली प्रथा विरासत में मिली, जिसके तहत भूमि का स्वामित्व मुट्ठी-भर लोगों के हाथ में सिमट गया, जबकि भूमि पर दिन-रात मेहनत करने वाले विशाल बहुसंख्यक लोग महज रैय्यत होकर रह गये।

जमींदारों का आर्थिक गतिविधियों में कोई योगदान नहीं था : जो जमीनें रैय्यतों द्वारा जोती जाती थीं, वे तब भी कम पैदावार नहीं देतीं अगर जमींदार होते ही नहीं। जो लगान वे पाते थे, उसके बदले में वे किसी तरह का सेवा-कार्य नहीं करते थे तथा सही अर्थ में वे परजीवी कीड़े या 'सार्वजनिक छत्ते में निठल्ले पड़े रहने वाले विलासी नर-मधुमक्खी' थे।

सम्मानित अपवाद की तरह वे गैर-खेतिहर भू-स्वामी बिना कमाई के मिले पैसे अंधाधुंध खर्च करते हुए अपना विलासितापूर्ण जीवन बड़े ठाठ से बसर करते थे। अपने देशवासियों के लिए वे उदात्त जीवन के आदर्श नहीं थे और इस तरह राष्ट्रीय चरित्र की गरिमा को घटाने का ही काम करते थे।

इन तथा अन्य कई कारणों से देश के राष्ट्रीय नेतृत्व ने निश्चय किया कि अगर सामाजिक और आर्थिक सुधार के लिए तथा राजनीतिक स्थिरता के लिए रुकावटें साफ की जानी हैं, तो जमींदार-रैय्यत वाली सामंती प्रथा को खत्म होना ही है।

संसदीय सचिव और राजस्व मंत्री दोनों ही रूपों में चरण सिंह ने भारतीय संघ के सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश में इस दूषित प्रथा के उन्मूलन में प्रमुख भूमिका निभाई, इससे ऐसे सारे लोगों के अनेक सच्चे मित्रों को मार्गदर्शन मिला, जो अधिक प्रतिदान पाये बिना धरती माता को रिझाने के लिए दिन-रात मेहनत कर रहे थे। फिर भी, जनता की नजर में चरण सिंह को लांछित करने के लिए अनेक पत्रकारों और राजनीतिज्ञों ने उन्हें 'कुलकों' या धनी किसानों का मित्र कहते हुए उनकी निन्दा की। अब इस एकालाप के पाठक ही तय करेंगे कि यह आरोप कहां तक सही है तथा यह सच्चाई और जनहित की भावना से प्रेरित है

या ऐसे अभिप्रायों से जो किसी भी देश के सार्वजनिक जीवन के उद्देश्यों से मेल नहीं खाते।

रूसी भाषा में, 1917 की क्रांति से पहले, 'कुलक' शब्द से एक ऐसे बेईमान देहाती व्यापारी का बोध होता था जो अपने श्रम से नहीं, किसी और के श्रम से धनवान होता था—सूदखोरी के जरिए, दलाली का धंधा करते हुए। फिर भी, इसी के फलस्वरूप 1930 से, अलेक्जंडर सोल्झेनित्सिन के अनुसार, "कृषक वर्ग की ताकत को नष्ट करने के लिए 'कुलक' शब्द का प्रयोग बदले हुए अर्थ में किया जाने लगा, जबकि भूमि सम्बंधी महान राज्यादेश जारी हुए सिर्फ बारह ही वर्ष बीते थे··· वही राज्यादेश जिसके बिना किसान बोलशेविकों का साथ देने से इंकार कर देते और जिसके बिना क्रांति विफल हो गई होती। ईर्ष्या-जलन और अपमान का हिसाब चुकता करने के लिए यह सही समय था। एक वर्ग के तौर पर इन सारे नये शिकारों के लिए एक नये शब्द की जरूरत थी···और उसने जन्म लिया। इसमें अब तक एक अपूर्व ध्वनि आ गई थी: 'पॉडकुल्कनिक'···'कुलकों' का मददगार व्यक्ति। दूसरे शब्दों में, 'मैं तुम्हें शत्रुओं का साथी समझता हूं' और वह आपको खत्म कर देता है। ग्रामीण क्षेत्र के किसी फटेहाल भूमिहीन श्रमिक को आसानी से 'पॉडकुल्कनिक' की संज्ञा दी जा सकती थी।"*

भारत में यह 'कुलक' शब्द गाली के अर्थ में प्रयुक्त होने के लिए आया है। हालांकि लोकदल के आलोचक अगर इस शब्द के जरिए यह जताना चाहते हैं कि इस दल का नेता छोटे किसान···वह छोटा किसान जो जिस भूमि पर श्रम करता है, उसका स्वामी है या जिसे स्वामी बनाया जाना चाहिए, या कम-से-कम जिसे उसके उपभोग का स्थायी अधिकार प्रदान किया जाना चाहिए···का अडिग पक्षधर है, तो उन अति 'सुधारवादियों' या दलितों के बंधुओं के साथ कोई विवाद नहीं हो सकता, जो यही पसंद करेंगे कि कृषक वर्ग को सामूहिक फार्मों में धकेल दिया जाए और इस तरह उनकी स्वाधीनता छीन ली जाए या उन्हें महानगरीय झोपड़पट्टियों में शरण लेने को बाध्य कर दिया जाए।

उत्तर प्रदेश में लागू किये गये भूमि-सुधार अपने स्वरूप में बड़े क्रांतिकारी थे। बिना किसी भय या विरोधाभास के यह दावा किया जा सकता है कि विश्व में कहीं भी लोकतंत्र के अन्तर्गत शोषितों की सहायता के लिए इस तरह के दूरगामी उपाय नहीं किये गये हैं। इस राज्य में 'जमींदारी' या जमींदार रैय्यत वाली प्रथा जड़मूल समेत समाप्त कर दी गई है। इस कठिनतम-काश्तकारी की हैरान कर देने वाली जटिलता और राज्य का आकार विशाल होने के कारण कठिनतम-कार्य को पूरा करने का सारा श्रेय हर मायने में निर्विवाद रूप से चरण

---

* अलेक्जंडर सोल्झेनित्सिन, 'गुलग आर्किपेलागो', अध्याय-II,, पृष्ठ-55।

सिंह को जाता है।

इन सुधारों ने राज्य मंत्रिमंडल में और उसके बाहर भी जिस तीखे विरोध को जन्म दिया, उसकी एक लम्बी कहानी है जो आगे के पृष्ठों में संक्षिप्त रूप से वर्णित है; विरोध में तो कुछ ऐसे लोग भी खड़े थे जिन्हें बाहर की दुनिया समाजवादी या प्रगतिशील के रूप में जानती थी।

चरण सिंह ने, चाहे संसदीय सचिव रहे या मंत्री, हमेशा दृढ़संकल्पी रुख दिखाया; हालांकि कभी-कभी इस्तीफा देने के बिन्दु तक जा पहुंचे क्योंकि वह मानते थे कि प्रदत्त स्थितियों में छोटे फार्म बड़े फार्मों की अपेक्षा एकड़-प्रति-एकड़ ज्यादा उपज देते थे, कि वे बड़े फार्मों की अपेक्षा ज्यादा रोजगार जुटाते थे, कि वे देहाती क्षेत्रों में आय की घोर विषमता को दूर करते थे और यह कि जो व्यक्ति अपने हल के नीचे छोटे-से-छोटे भूखण्ड का स्वामी था, वह अपने अन्य किसी भी देशवासी की अपेक्षा लोकतंत्र का बड़ा प्रहरी था।

अब इसे केवल इतिहास की अदालत और सच्चाई को जानने में रुचि रखने वाले वर्तमान पीढ़ी के सदस्यों के विवेक पर छोड़ा जा सकता है, यह बताने के लिए कि 'पॉडुकुल्कनिक'—शत्रु का साथी—की संज्ञा उस व्यक्ति को दी जा सकती है जो इन सुधारों के लिए जिम्मेवार था, या बड़े पैमाने पर की जाने वाली खेती के समर्थक को।

पचास के दशक में यद्यपि तीन राज्यों यानी बिहार, पश्चिम बंगाल और मध्य प्रदेश के राजस्व मंत्रियों ने भूमि सुधारों के प्रत्यक्ष अध्ययन के लिए उत्तर प्रदेश का दौरा करना जरूरी समझा था, लेकिन आम तौर पर राज्य से बाहर के लोग—यहां तक कि सार्वजनिक मामलों में रुचि रखने वाले भी—उनके बारे में आज भी अगर जानते हैं तो बहुत कम जानते हैं। इसका कारण इस तथ्य में निहित है कि न तो योजना आयोग के भूमि सुधार प्रभाग ने और न ही नई दिल्ली में राजनीतिक सत्ता की बागडोर थामे रखने वालों ने इन सुधारों के वास्तविक स्वरूप को कभी स्वीकारा। शायद इसलिए कि वे अपने सपनों और प्रस्तावों से आगे, बहुत दूर आगे चले गये थे।

इस एकालाप का कोई भी निष्पक्ष पाठक इस निष्कर्ष पर पहुंचे बिना नहीं रह सकता कि चरण सिंह स्वयं 'कुलक' होने के बजाए कमजोरों और पद-दलितों के हित में पूरे तीन दशक (1936-66) तक लगातार संघर्षरत रहे, उन लोगों के विरुद्ध जो खुद सही अर्थ में इस नामोपाधि के उपयुक्त पात्र थे।

—लेखक

चौधरी चरण सिंह : आरम्भिक जीवन

चौधरी चरण सिंह के पूर्वज सन् 1857 के विद्रोह के प्रमुख स्वतंत्रता सेनानी, हरियाणा के फरीदाबाद जिलांतर्गत बल्लभगढ़ के उस राजा नाहर सिंह के परिजन थे, जिन्हें दिल्ली के चांदनी चौक में फांसी दे दी गई थी। राजा के अनुयायियों पर ब्रिटिश हुकूमत ने दमनचक्र जारी किया तो उससे बचने के लिए चरण सिंह के दादा चौधरी बादाम सिंह अपने परिवार के साथ यमुना नदी से बहुत दूर आगे भटौना नामक गांव में चले गये, जो अब उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जिले में है। किसी आदमी के तौर-तरीके, दृष्टिकोण और आचार-विचार काफी हद तक उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि की देन होते हैं। चरण सिंह के साथ बिल्कुल यही बात है।

चौधरी चरण सिंह का जन्म उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले के नूरपुर गांव में, एक किसान के कच्ची मिट्टी की दीवारों और फूस के छप्पर वाले घर में 23 दिसम्बर 1902 को हुआ था। परिवार के आवासीय अहाते के सामने ही एक कच्चा कुआं था, जिसका उपयोग पीने के पानी के साथ-साथ सिंचाई के लिए भी होता था। उनके पिता पांच भाइयों में सबसे छोटे थे, जो निकटवर्ती गांव कुचेसर के बड़े जमींदार या भू-स्वामी की रैय्यत के रूप में अपने हल से जमीन जोतते थे। फिर भी, उनके जन्म के छह महीने के भीतर ही उनके पिता जानीखुर्द गांव में जा बसे, जो उसी जिले में तकरीबन पच्चीस मील की दूरी पर था और जहां परिवार ने लगभग दस एकड़ जमीन खरीदी थी। उनके दो छोटे चाचा ब्रिटिश भारतीय सेना में रह चुके थे और 1899-1902 के दौरान दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेजों द्वारा डचों के विरुद्ध जारी 'बोअर युद्ध' में उन्होंने भाग लिया था।

चौधरी चरण सिंह ने 'बैचलर ऑफ साइंस' की डिग्री 1923 में, एम० ए० (इतिहास) की डिग्री 1925 में और कानून की डिग्री 1926 में प्राप्त की। स्वतंत्र रूप से वकालत उन्होंने गाजियाबाद में 1928 में शुरू की। नमक कानून तोड़ने पर 1930 में उन्हें छह महीने के लिए जेल भेज दिया गया था। अगस्त 1940 में उन पर एक झूठा आरोप लगाते हुए मुकदमा चलाया गया, लेकिन मजिस्ट्रेट ने उन्हें बरी कर दिया। तीन महीने बाद नवम्बर 1940 में व्यक्तिगत

सत्याग्रह आन्दोलन के सिलसिले में उन्हें एक वर्ष कैद की सजा दी गई। फिर अगस्त 1942 में डी० आई० आर० के तहत उन्हें गिरफ्तार किया गया और नवम्बर 1943 में रिहा किया गया।

अपने एक मित्र श्री गोपीनाथ 'अमन' के साथ, जो बाद में दिल्ली जाकर प्रसिद्ध उर्दू दैनिक 'तेज' के सम्पादकीय विभाग के एक सदस्य हो गए, मिलकर उन्होंने 1929 में गाजियाबाद नगर कांग्रेस कमेटी की स्थापना की थी, जिसके विभिन्न पदों पर वह 1939 तक कार्यरत रहे। उसी वर्ष वह मेरठ जाकर रहने लगे थे। मेरठ में 1939 से 1946 तक वह जिला कांग्रेस कमेटी के या तो अध्यक्ष रहे या महामंत्री।

फरवरी 1937 में 34 साल की उम्र में वह पहली बार उत्तर प्रदेश की विधान सभा के लिए निर्वाचित हुए थे।

सामान्य सदस्य की हैसियत से 1938 में उन्होंने एक कृषि उत्पाद बाजार विधेयक विधान सभा में पेश किया। उन्होंने 'एग्रीकल्चरल मार्केटिंग' (कृषि-बाजार-व्यवस्था) शीर्षक से एक लेख लिखा जो दिल्ली से प्रकाशित 'हिन्दुस्तान-टाइम्स' के 31 मार्च और 1 अप्रैल 1938 के अंकों में प्रकाशित हुआ। विधेयक का उद्देश्य व्यापारियों की लोलुपता से उत्पादकों के हितों को सुरक्षा प्रदान करना था, जिसे ज्यादातर राज्यों द्वारा अपनाया गया—1940 में वैसा कर दिखाने वाला पहला राज्य पंजाब रहा। लेकिन यह 1964 में ही संभव हुआ कि इसे मूलत: राज्य की विधि-पुस्तिका में दर्ज किया जा सका। इस लम्बी अवधि के दौरान चरण सिंह के प्रयासों को विफल किया जाता रहा, उन निहित स्वार्थों के प्रतिनिधियों द्वारा जो कांग्रेस और कांग्रेस की सरकार दोनों में ऊंची जगहों पर मोर्चाबंदी किये हुए थे। श्री सी० बी० गुप्ता द्वारा यह दलील दी जा रही थी कि किसान चूंकि समृद्ध और शिक्षित हो चले हैं, इसलिए व्यापारियों के विरुद्ध वे खुद खड़े हो सकते हैं तथा यह भी कि यह एक नियंत्रणकारी उपाय था—और नियंत्रणों को जनता पसंद नहीं करती—इसलिए कृषि उत्पाद बाजार विधेयक न केवल अनावश्यक बल्कि नुकसानदेह भी था। हालांकि यह भुला दिया गया कि इस तरह के कानून आर्थिक रूप से विकसित उन देशों में भी बनाने पड़े थे, जहां व्यापक साक्षरता थी तथा यह कि इसका उद्देश्य बेची या खरीदी जाने वाली सामग्री की कीमत या तादाद पर नियंत्रण नहीं, बल्कि दो पक्षों में से एक ज्यादा चालाक पक्ष द्वारा किये जाने वाले अनाचार पर नियंत्रण था।

यह 5 अप्रैल 1939 की बात थी, जब कांग्रेस विधायक दल की कार्यकारिणी समिति के समक्ष वह एक प्रस्ताव यह कहते हुए ले आये कि एक अच्छी सरकार का हित चूंकि इसमें है कि उसके कर्मचारियों की जीवन-शैली और आचार-विचार

उन लोगों के अनुरूप हों जिनके मामले निपटाने की उनसे अपेक्षा की जाती है, इसलिए कम-से-कम 50 प्रतिशत सरकारी नियुक्तियां उन खेतिहरों या कृषकों के पुत्रों और आश्रितों के लिए आरक्षित होनी चाहिए जिनसे हमारी जनता का विशाल समूह बनता है। लेकिन पार्टी को इतना वक्त नहीं मिला कि वह उस प्रस्ताव पर विचार करती जो छह महीने बाद ही यानी अक्टूबर 1939 में विधायिका से पार्टी के इस्तीफा देने के साथ ही खत्म हो गया। राज्य के कांग्रेसी नेतृत्व ने भी उसका स्वागत नहीं किया था : अपने विवेक की तुष्टि उसने बस एक आदेश जारी कर की कि जब भी लोकसेवा आयोग से चयन के लिए कहा जाए, तब राज्य की राजपत्रित लोकसेवा में एक स्थान किसी 'रैय्यत' के पुत्र के लिए आरक्षित रखा जाए।

ऋण मुक्ति विधेयक (1939) को तैयार करने और अंतिम रूप देने में उन्होंने प्रमुख भूमिका निभाई थी जिससे किसानों को बड़ी राहत मिली थी। अगस्त 1939 में उन्होंने एक लेख लिखा जो लखनऊ के 'नेशनल हेराल्ड' में प्रकाशित हुआ था। उसमें विधेयक के प्रावधानों की व्याख्या करते हुए उन्होंने साहूकारों की लॉबी द्वारा की गई आलोचना के उत्तर दिये थे। पार्टी की कार्यकारिणी समिति की बैठक में बहस के दौरान कांग्रेस समाजवादी पार्टी के कुछ प्रमुख स्तम्भों की मानसिकता देख उन्हें भारी निराशा हुई, जिनमें उदाहरण के तौर पर सार्वजनिक मंच से किसानों और मजदूरों के प्रति बहुत ही हमदर्दी दिखाने वाले आचार्य नरेन्द्र देव भी शामिल थे, जिन्होंने जोरदार ढंग से साहूकारों के पक्षधर जैसा रवैया अख्तियार किया।

भूमि और कृषि पर कांग्रेसी घोषणा-पत्र के मसौदे को, जिसमें जमींदारी का उन्मूलन निहित था और जिसे चरण सिंह द्वारा 9 सितम्बर 1945 को तैयार किया गया था, नवम्बर 1945 के अंतिम सप्ताह में आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में किसान कार्यकर्ताओं की बनारस में आयोजित बैठक द्वारा अपना लिया गया। यही वह घोषणा-पत्र था जो इस विषय से सम्बंधित उस प्रस्ताव का आधार बना, जिसे अखिल भारतीय कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने दिसम्बर 1945 में हुई कलकत्ते की अपनी बैठक में स्वीकार किया था।

बनारस में किसान संगठन द्वारा स्वीकृत मसौदा घोषणा-पत्र में एक धारा यह भी थी जो कहती थी कि "धरती जोतने वालों को देश के प्रशासन में उनकी उचित भागीदारी प्रदान की जाएगी और लोक सेवाओं में उनके बेटों की लगातार बढ़ती संख्या में नियुक्ति की जाएगी।" मार्च 1947 में चरण सिंह ने उपर्युक्त विचारों पर (देखें परिशिष्ट) रोशनी डालने के लिए एक लम्बा और तर्कपूर्ण लेख लिखा तथा उसकी प्रतियां कांग्रेसी विधायकों के साथ-साथ सार्वजनिक मामलों में

रुचि रखने वाले अन्य व्यक्तियों के बीच भी वितरित करवाईं। फिर भी, इससे सम्बंधित उनके प्रयास का कुछ भी नतीजा नहीं निकला। सार्वजनिक जीवन और प्रशासन पर गैर-कृषकों की इतनी तगड़ी पकड़ थी कि 1961 में किये गये सर्वेक्षण के अनुसार आई० सी० एस० और आई० ए० एस० के कुल 1347 सदस्यों में सिर्फ 155 (11.5 प्रतिशत) ही ऐसे थे जो कृषक-परिवारों से आये थे।

विषय सूची

1. मैदानी भागों में जमींदारी उन्मूलन 1
2. विरोधी आलोचकों को जवाब 19
3. भूमि के रिकार्ड और पटवारी 37
4. भूमि पुनर्ग्रहण की मांग से इंकार 47
5. विरोधियों के साथ संघर्ष 55
6. अधिवासियों की समस्या पर टिप्पणी 63
7. कमजोर और पिछड़े वर्गों को भूमि सुधारों से लाभ 91
8. जोतों की चकबंदी 98
9. केरल की स्थिति के साथ तुलना 103
10. पर्वतीय क्षेत्रों में जमींदारी प्रथा कैसे समाप्त हुई 107
11. सहकारी कृषि 111
12. हदबंदी का लागू होना और भूमि का पुर्नवितरण 122
13. भूमि-कर में वृद्धि का विरोध 151
14. श्रीमती सुचेता कृपलानी का दौर 193
15. सारांशतः 200

परिशिष्ट 207

निर्देशिका 222

1

मैदानी भागों में जमींदारी उन्मूलन

चौधरी चरण सिंह 1946 में राज्य सरकार के संसदीय सचिव नियुक्त हुए और पहले राजस्व मंत्री के साथ, फिर स्वास्थ्य, स्थानीय स्वायत्त शासन मंत्री तथा अन्त में स्वयं मुख्यमंत्री के साथ सम्बद्ध हुए। उन्हें जून 1951 में पूर्ण कैबिनेट मंत्री का दर्जा देकर विधि और न्याय विभाग का स्वतंत्र प्रभारी बनाया गया। फिर भी उनकी मुख्य रुचि राजस्व विभाग में थी, जो उन्हें मई 1952 में सौंपा गया। वह 1946 से पांच वर्षों तक यद्यपि संसदीय सचिव रहे, फिर भी जहां तक राजस्व विभाग का सवाल था, उस अवधि में भी उन्होंने लगभग मंत्री के पूरे अधिकारों का उपभोग किया क्योंकि राज्य का कांग्रेस विधायक दल भूमि सुधार सम्बन्धी उनकी अवधारणा के पक्ष में था तथा विशेष रूप से उनकी योग्यता और कठोर श्रम करने की क्षमता के कारण मुख्यमंत्री पंडित गोविन्द बल्लभ पंत का उन पर पूरा विश्वास था।

संसदीय सचिव या राजस्व और कृषि मंत्री (थोड़े-थोड़े समय के लिए यातायात, बिजली और सिंचाई, गृह, वित्त, वन और स्थानीय स्वायत्त शासन तथा अन्य विभागों के मंत्री भी) के रूप में उन्होंने जो-जो कार्य किए तथा उत्तर प्रदेश की जनता के हित में सार्वजनिक मुद्दों पर जिस तरह संघर्ष किए, उनका पूरा लेखा-जोखा कई पृष्ठों में समा सकता है लेकिन यहां इस पुस्तक में सिर्फ भूमि-सुधार के क्षेत्र में उनकी उपलब्धियों का विवरण प्रस्तुत करना ही अभीष्ट है।

जो बात अक्सर भुला दी जाती है और जिसे ज्यादा उजागर करने की जरूरत है, वह यह कि उत्तर प्रदेश ने भूमि सुधार के मामले में पूरे देश को नेतृत्व दिया। इस राज्य में जमींदारी या भूस्वामी-रैयत प्रथा जड़-मूल से समाप्त कर दी गई है। भूमि सुधारों के दायरे में कानून के हर अंश का मसौदा इतनी अच्छी तरह से सोच-विचार कर तैयार किया गया था कि न्यायपालिका एक को भी रद्द नहीं कर

पाई, जबकि दूसरे कई राज्यों में ऐसा हुआ। जो-जो महत्त्वपूर्ण कदम उठाए गए थे, उनकी व्याख्या करते हुए चरण सिंह ने समाचार पत्रों में बीसियों लेख लिखे, रेडियो पर बीसियों वार्ताएं दीं या भाषण प्रसारित करवाए। साथ-ही-साथ इस बड़े राज्य के हर क्षेत्र में जाकर सैंकड़ों बड़ी जनसभाओं को सम्बोधित किया।

उत्तर प्रदेश की विधान सभा ने 8 अगस्त 1946 को निम्नांकित प्रस्ताव पास किया :

"यह विधान सभा इस प्रदेश में जमींदारी प्रथा के उन्मूलन को सिद्धांततः स्वीकार करती है जिसके अन्तर्गत राज्य और काश्तकारों के बीच बिचौलिए आते हैं, तथा निश्चय करती है कि ऐसे बिचौलियों के अधिकार न्यायसंगत मुआवजे के भुगतान द्वारा अधिगृहीत किए जाएं और इस उद्देश्य से योजना तैयार करने के लिए सरकार को चाहिए कि वह एक समिति नियुक्त करे।"

राज्य सरकार ने इसका अनुसरण करते हुए राज्य की भू-स्वामी-रैय्यत प्रथा के उन्मूलन की योजना तैयार करने के लिए प्रीमियर (जैसा कि उन दिनों मुख्यमंत्री को कहा जाता था) की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की।

राज्य सरकार ने इसके फौरन बाद ही 1 सितम्बर 1946 को आदेश जारी कर काश्तकारों और छोटे काश्तकारों के कब्जे में जो जमीन थी, उसकी बेदखली पर रोक लगा दी। यू० पी० टेनेन्सी एक्ट 1939 में आवश्यक संशोधन करके इन आदेशों को विधिसम्मत बनाया गया। इसके अलावा 1947 के एक्ट संख्या × के संशोधन विधेयक द्वारा बेदखली के स्थगन को कानूनी रूप दिया गया, जो इस प्रावधान के साथ कि जिन काश्तकारों और छोटे काश्तकारों को पहली जनवरी 1940 को या उसके बाद अपनी जोतों से बेदखल किया गया उन्हें फिर से कब्जा दिलाया जाए, 14 जून 1947 से लागू हो गया।

जमींदारी उन्मूलन समिति अपने काम में लगी हुई थी कि इसी बीच गांव के सारे निवासी (जमींदार या भूस्वामियों को छोड़कर, जो अपने अधिकारों का उपयोग पहले से ही कर रहे थे), चाहे वे किसी भी प्रकार के काश्तकार, खेत-मजदूर या और कुछ हों, अपनी-अपनी जोतों के स्वामी घोषित कर दिए गए। उत्तर प्रदेश ग्रामीण आबादी एक्ट के तहत, जिसे गवर्नर ने मंजूरी दी थी, उन्हें अधिकार भी दिया गया कि वे अपने कच्चे मकानों को पक्का कर सकते हैं तथा सहन, दरवाजों और घर के साथ लगी हुई जमीन को सुधार-संवार सकते हैं। यह कानून अनुसूचित जातियों के लिए वरदान साबित हुआ, क्योंकि अपनी आवासीय झोपड़ियों पर उनका स्वामित्व नहीं रहने के कारण जमींदार लोग बेदखली की धमकी देकर उनसे बेगारी करवाते थे और मुफ्त काम करने के लिए बाध्य करते थे। इस कानून को आगे चलकर जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार एक्ट,

1950 में समाहित किया गया, जिसमें यह भी जोड़ दिया गया कि प्रत्येक ग्रामवासी घर के साथ लगी जमीन पर लगाए गए पेड़ों और कुएं या कुओं का भी स्वामी होगा। इस अधिकार के लिए उन्हें कोई मुआवजा नहीं देना था।

सेंसस ऑफ इंडिया, 1951, भाग II : उत्तर प्रदेश (खण्ड I-ए रिपोर्ट) के अनुसार 1951 में उत्तर प्रदेश की जनसंख्या 6 करोड़ 30 लाख से अधिक थी। इनमें से 5 करोड़ 40 लाख 60 हजार (85 प्रतिशत) लोग 'ग्रामीण' के रूप में सूचीबद्ध थे। वे 1,10,000 गांवों और 2,57,500 छोटी-छोटी बस्तियों में रहते थे। पूरी आबादी में से 4 करोड़ 60 लाख 90 हजार (74.2 प्रतिशत) लोग सीधे कृषि पर निर्भर थे और 2 करोड़ से ज्यादा लोग सक्रिय या अर्द्ध-सक्रिय तौर पर कृषि से जुड़े मजदूर थे। कृषि योग्य भूमि लगभग 2 एकड़ प्रति खेत-मजदूर थी और कृषि पर सीधे निर्भर लोगों में यह 0.8 एकड़ प्रति व्यक्ति थी।

कृषि योग्य भूमि पर आबादी के दबाव का खुलासा इस तथ्य से भी होता है कि जमींदारी उन्मूलन समिति की रिपोर्ट 1948, के अनुसार कुल पंजीकृत काश्तकारों में 21 प्रतिशत से अधिक ऐसे लोग हैं जिनके पास 0.5 एकड़ से कम जमीन है। कृषि भूमि के कुल क्षेत्रफल की चौथाई से कम में दो तिहाई से अधिक किसानों की जोतें हैं। दरअसल ये आंकड़े जितना बताते हैं, वास्तविक जोतें उनसे भी कम हैं क्योंकि इनमें ऐसे तकरीबन 3 करोड़ 60 लाख किसानों की 4 करोड़ 10 लाख एकड़ भूमि भी शामिल है, जिन्हें जमींदारी उन्मूलन समिति की रिपोर्ट, भाग-II, पृष्ठ 8 पर शिकमी (छोटे) काश्तकार के रूप में सूचीबद्ध किया गया है।

जमींदारी उन्मूलन समिति ने अपनी रिपोर्ट 1948 के अन्त में पेश की। समिति के एक सदस्य की हैसियत से चरण सिंह ने 1947 में एक ज्ञापन प्रस्तुत किया था, लेकिन उस पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। इसका कारण यह भी था कि समिति के अधिकांश अन्य सदस्यों की सामाजिक पृष्ठभूमि भिन्न थी, अत: ग्रामीण समस्याओं पर चरण सिंह के विचारों और समिति के अधिकांश सदस्यों की वैचारिकता में जमीन आसमान का फर्क था। अपना असहमति-पत्र प्रस्तुत करने की बजाए उन्होंने मुख्यमंत्री को सीधे लिखना उचित समझा। अपने 18 अक्टूबर, 1948 के नोट में उन्होंने मुख्यमंत्री से आग्रह किया कि समिति की कम-से-कम उन सात सिफारिशों को तो तत्काल रद्द किया ही जाए, जिनके आधार पर योजना तैयार की गई है। इस पर मुख्यमंत्री ने विधेयक का बेहतर मसौदा तैयार करने के लिए उन्हीं की अध्यक्षता में राजस्व अधिकारियों और कानून अधिकारियों की एक समिति गठित कर दी।

यहां पर 18 अक्टूबर 1948 में की गई यह टिप्पणी प्रासंगिक है :

पहली : जमींदारी उन्मूलन समिति ने प्रस्तावित किया है कि मुआवजे का

भुगतान सरकार 40 वर्षों में देय बांडों के रूप में करे। हालांकि 90 प्रतिशत से अधिक मूल्य के बांड बेचे-खरीदे जा सकेंगे। मेरा सुझाव है कि निम्नांकित कारणों से इस परामर्श पर फिर से विचार किया जाना चाहिए।

दूसरी : मेरी राय में भूमि के क्रय मूल्य पर कोई सीमाबंदी नहीं होनी चाहिए। दलील सिर्फ यह पेश की जाती है कि खरीददार अगर बाजार मूल्य चुकाने पर बाध्य होगा तो ठीक ढंग से खेती करने के लिए उसके पास बहुत कम पूंजी रह जाएगी। यह प्रस्ताव यूरोपीय और रूसी कृषि साहित्य से उधार लिया गया है, जहां 'पूंजी' शब्द का इस्तेमाल लगभग पूरी तरह मशीनरी के अर्थ में होता है। यहां, अपने देश में कुल नहीं तो सौ में से निन्यानवे मामलों में किसान को चाहिए सिर्फ एक जोड़ा बैल।

इस पर कठोर वास्तविकता यह है कि घोर आर्थिक दबाव में भी जमीन की वास्तविक कीमत क्षेत्रीय दर के मुकाबले 40 से 50 गुना तक अधिक होती है, जबकि समिति का प्रस्ताव है कि उस दर से सिर्फ 12 गुना अधिक मूल्य चुकाया जाए। आज यह गुणवत्ता बढ़कर कम-से-कम 175 हो गई है और कई मामलों में तो और भी ऊंची चली गई है। भूमि का अत्यधिक मूल्य ह्रास सौ तरह की चालबाजियों और कानून को झांसा देने की प्रवृत्तियों को जन्म देगा। उदाहरण के लिए, लोग जमीन को बिक्रीनामा के बजाए दान पत्र के जरिए खरीदने वाले के नाम कर देना चाहेंगे। हम सम्भावित दान-उपहार को नियंत्रित या प्रतिबंधित तो नहीं कर सकते, न ही किसी तरह बीच में पंचायत को ला सकते हैं।

तीसरी : इसी प्रकार पट्टे की रकम की सीमाबंदी नहीं होनी चाहिए। शोषण से बचाव की दृष्टि से समिति ने यह सीमाबंदी की है कि पट्टा देने वाला सरकार को चुकाए जाने वाले भूमि-कर और उसके 50 प्रतिशत से अधिक किराये की रकम नहीं प्राप्त करेगा, लेकिन हमें भूलना नहीं चाहिए कि विधवाएं, नाबालिग तथा अन्य अक्षम लोग ही पट्टा देने के अधिकारी होंगे और वे ऐसा इसलिए नहीं करेंगे कि दूसरों के श्रम का शोषण करना चाहते हैं, बल्कि इसलिए कि अपने खेतों की जुताई खुद करने में वे शारीरिक दृष्टि से अक्षम हैं। पट्टा देने के अधिकार की सीमाबंदी ऐसे पट्टादाताओं के लिए व्यावहारिक और लाभप्रद नहीं होगी।

चौथी : इन पाबंदियों के हटा लिए जाने पर पंचायत का किसी व्यक्ति की भूमि से कुछ लेना-देना नहीं रहेगा (सार्वजनिक कचरे को ठिकाने लगाने, आबादी, आम रास्ते, तालाब आदि की देखरेख का दायित्व तो पंचायत पर रहेगा ही) और ऐसा ही होना भी चाहिए। अच्छी-से-अच्छी जमीन को काफी गिरे हुए मूल्य पर बेचने पर अधिकार, चाहे स्थायी तौर पर या सीमित अवधि के लिए, एक बहुत बड़ी आर्थिक ताकत है। इसे हमारे ग्रामीण समाज की मौजूदा

परिस्थितियों में किसी निर्वाचित निकाय को सौंप देने से काफी भ्रष्टाचार और विवाद पैदा होंगे।

पांचवीं : जमींदारी उन्मूलन समिति कहती है कि स्वामित्व या संयुक्त हिस्सेदारी का दर्जा सभी शिकमी काश्तकारों को भी दिया जाना चाहिए, अपने कृषि क्षेत्र के लिहाज से वे चाहे काश्तकार के अधीन हों या जोतदार (मुखिया) के अधीन।

छठी : बड़े फार्मों पर खेती चाहे भूस्वामी के अधीन होती हो या काश्तकार के अधीन, उन्हें तोड़ दिया जाना चाहिए और 50 एकड़ से अधिक जो भी जमीन हो, उसे पहले तो लाभकारी बनाने के उद्देश्य से अलाभकार जोतों में तथा फिर लाभकारी क्षेत्र के भूमिहीनों में वितरित किया जाना चाहिए। रिपोर्ट में इस सुझाव पर चर्चा की गई और फिर इस आधार पर उसे रद्द कर दिया गया : (क) इससे बहुत सारे किसानों में विरोध की भावना पनपेगी, (ख) जमींदारों पर भारी मुसीबत आएगी, जिनकी आमदनी में जमींदारी उन्मूलन के द्वारा हम कटौती कर ही रहे हैं, (ग) उपलब्ध क्षेत्र की लघुता के लिहाज से यह व्यवहारतः उपयोगी नहीं है, (घ) इससे बड़ी संख्या में कृषि मजदूर विस्थापित हो जाएंगे, जिनके लिए उपयुक्त समय के भीतर वैकल्पिक रोजगार ढूंढ पाना सम्भव नहीं होगा।

बड़े फार्मों से निकले कृषि मजदूरों की बेरोजगारी वाली यह आखिरी दलील मन को नहीं के बराबर छूती है। अन्ततः यह पूंजीवादी कृषि व्यवस्था को जारी रखने की चिरौरी जैसी प्रतीत होती है, जिसे शायद कोई नहीं चाहता। दुनिया भर के कृषि अर्थशास्त्री इस बात से सहमत हैं कि बड़ी जोतों की अपेक्षा छोटी जोतें प्रति एकड़ उपज ज्यादा देती ही हैं, रोजगार भी ज्यादा देती हैं। अतः बड़े फार्मों का टूटना रोजगार की दृष्टि से हानिप्रद होने के बजाए लाभप्रद ही होगा। यह मानवीय श्रम के शोषण का भी अन्त करेगा, जो बड़े पैमाने पर निजी खेतीबारी की देन है। अतएव राष्ट्रीय हित का यह स्पष्ट तकाजा है कि बड़े फार्मों को कूच कर जाना चाहिए।

सातवीं : एक सुझाव कहता है कि 10 एकड़ से कम क्षेत्र की जोत अविभाज्य होगी। तो फिर, जो जोतें 10 एकड़ या इससे ज्यादा क्षेत्र में फैली हुई हैं, उनके बारे में क्या कहा जाए? अगर वे विभाजन योग्य हैं तो इसका मतलब है कि अलाभकर जोतें आगे भी अस्तित्व में आती रहेंगी, क्योंकि समिति के अनुसार 10 एकड़ से कम क्षेत्र की सभी जोतें अलाभकर हैं। ऐसी स्थिति में तो सुधार का उद्देश्य ही विफल हो जाएगा। मैंने सवा छः एकड़ की न्यूनतम सीमा रखी है। ('भिन्न' अंक पर मैं बल देता हूं, क्योंकि सवा छः एकड़ 10 मानक बीघे के बराबर होता है। इसे हमारे किसान समझते हैं)। इसलिए 12.5 एकड़ से कम की

जोत के अविभाज्य रहने से आगे सभी जोतें सवा छः और साड़े बारह एकड़ के बीच अलग-अलग आकार की होंगी । तो फिर अविभाज्यता की दृष्टि से कह सकते हैं कि मैंने समिति से ज्यादा ऊंचे आंकड़े दिए हैं । फिर भी ये आंकड़े मनमाने ढंग से नहीं दिए हैं । मैं "लाभकर" जोत उसे मानता हूं जो उत्पादन के किसी अविभाज्य तत्व के लिए रोजगार उपलब्ध करता हो, जैसे न्यूनतम कृषि उपकरण, यानी एक जोड़ा बैल, जिन्हें हर स्थिति में किसान रखेगा ही तथा एक औसत किसान परिवार के लिए काम । तथ्यतः सवा छः एकड़ अच्छी कृषि भूमि ऐसे परिवार को पूरा रोजगार दे सकती है, ठीक जैसे साधारण भूमि के मामले में साढ़े बारह एकड़ कृषि भूमि दे सकती है । फिर सवा छः एकड़ की निचली सीमा हस्तांतरण के मामले में कम ही लोगों की स्वतंत्रता को सीमित कर सकती है ।

अन्त में, सरकारी खेती पर जिस रिपोर्ट में विचार किया गया है, उसके बारे में मैं फिर से बहुत संशयशील हूं, हालांकि इसकी स्वैच्छिक प्रकृति को देखते हुए मैं इसका विरोध नहीं करता, क्योंकि प्रयोग करने में आखिर कोई हानि नहीं ।

राज्य मंत्रिमंडल ने प्रस्ताव समिति द्वारा तैयार किए गए जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार विधेयक को मई 1949 में स्वीकृति दी तथा 7 जुलाई को विधान सभा में पेश किए जाने के बाद उसे 12 जुलाई को विधान मंडल के दोनों सदनों की संयुक्त प्रवर समिति को सौंप दिया गया । प्रवर समिति का प्रतिवेदन 9 जनवरी 1950 को विधान सभा में प्रस्तुत किया गया । विधेयक अंततः जब दोनों सदनों में पारित हो गया और गवर्नर ने उस पर स्वीकृति की मुहर लगा दी, तब उसे भारतीय संघ के राष्ट्रपति के पास भेजा गया जिस पर 24 जनवरी 1951 को उनकी स्वीकृति मिल गई । फिर भी जमींदारों द्वारा, जिनकी अंततः छुट्टी कर दी गई थी, मुकदमा दायर किए जाने के कारण 24 जुलाई 1952 तक उसका लागू किया जाना रुका रहा ।

इस कानूनी विधेयक ने बिचौलियों के अधिकार को या तो खत्म कर दिया या खत्म कर देने का प्रस्ताव किया और सारी कृषि भूमि राज्य के हवाले कर दी । राज्य के विशाल क्षेत्र और आबादी में प्रचलित 46 प्रकार की भूमि काश्तकारियों वाले विस्मयकारी ढांचे को सरल बनाते हुए इसने भूमि सेवियों की सिर्फ चार श्रेणियां निर्धारित कीं—**भूमिधर** (भूमि का धारक), **सीरदार** (जोतने वाला), **आसामी** (स्वामित्व रहित) और **अधिवासी*** (दखलकार) जिसे सिर्फ अस्थायी या शिकमी काश्तकारी का हक हो ।

* आदिवासी से सर्वथा भिन्न

भूमिधर

उपर्युक्त विधेयक के कानूनी रूप ग्रहण करते ही निम्नलिखित सारे लोग स्वतः भूमिधर हो गए :

(क) सीर, खुदकाश्त और बगीचों के (वार्षिक 250 रुपये से अधिक राजस्व के साथ पट्टे पर दिए गए सीर को छोड़कर) या जहां ऐसी सीर या खुदकाश्त वाली भूमि जोत के लिहाज से उनके हित में समानुपाती थी, वहां पट्टा दवामी या इस्तमरारी (स्थायी पट्टा) द्वारा बिक्री अधिकार के साथ काश्तकार को दिए गए सीर से जुड़े बिचौलिये, जो जमींदार कहलाते थे।

(ख) सीर या खुदकाश्त वाली भूमि के वे बिचौलिये जो अपाहिज हों—चाहे वे भूराजस्व जितना भी चुकाते रहे हों; तथा

(ग) निर्धारित दर वाले काश्तकार, शिकमी भूस्वामी और अधीनस्थ भूस्वामी तथा लगानमुक्त अनुदानग्राही।

सीरदार

उक्त कानून के तहत निम्नांकित लोग सीरदार हुए :

स्वामित्व रहित काश्तकार, दखलकार, बगीचाधारक, पुश्तैनी काश्तकार, पट्टा दवामी या इस्तमरारी वाले काश्तकार और जमींदारों की सीर व खुदकाश्त जमीनों के वे काश्तकार जो 250 रुपये से अधिक भूराजस्व चुकाते रहे हों।

सीरदारों को अब वही लगान (जिसे अब भूराजस्व कहेंगे) देना था जो वे जमींदार को देते थे—इस शर्त के साथ कि वह चौथे दशक की भू-बंदोबस्ती के दौरान निर्धारित कानूनी दर के दो गुना से अधिक न हो। इसीलिए कृषि उत्पाद के लिहाज से उत्तर प्रदेश में लगान किसी भी मामले में मौजूदा दरों पर जोड़े गए कृषि उत्पाद-मूल्य के 1/2 यानी बीसवें भाग से अधिक नहीं थे और अन्य राज्यों में इस तरह के देय लगानों की अपेक्षा बहुत ही कम थे। विशेष अनुग्रह के चलते जिन सीरदारों का अपनी जमीनों पर दखल था—उन्हें खेती करने, बागवानी करने और पशुपालन के पूरे अधिकार दिए गए लेकिन बिक्री या उपभोग के अधिकार सहित गिरवी रखने यानी अंतरण के अधिकार* समाप्त कर दिए गए।

---

* आगे चलकर कानून में संशोधन किया गया जिसके अनुसार सहकारी समितियों द्वारा दिए गए ऋणों तथा कृषि विकास आदि के लिए दिए गए तकाबी ऋणों की वसूली के लिए सीरदारों को भूमि पर कानूनी हक मिला। यह सीरदारों की ऋण पात्रता को बेहतर बनाने के उद्देश्य से किया गया, जिन्हें स्वेच्छा से अंतरण का अधिकार नहीं था।

भूमिधरों और सीरदारों के अधिकार स्थायी और वंशगत थे, इसलिए उन्हें जो जमीनें क्रमश: पुराने अधिकारों के साथ मिलीं, उनकी अदला-बदली वे कर सकते थे।

आसामी

कानून लागू होने पर सामान्यतया ऐसे सारे लोग अब आसामी कहलाए— ऐसा व्यक्ति जिसका कानून लागू होने की तारीख से ठीक पहले भूमि पर अधिकार या कब्जा था। चाहे वह—

1. किसी बिचौलिये के बगीचे का बेदखल काश्तकार हो;
2. बगीचे की भूमि का शिकमी काश्तकार हो;
3. किसी काश्तकार का गिरवीदार हो;
4. ऐसा काश्तकार या ठेकेदार हो, जो किसी बिचौलिये के सीर या खुदकाश्त पर पट्टा दवामी या इस्तमरारी के आधार पर खेती कर रहा हो और सालाना भू-राजस्व 250 रुपये से अधिक नहीं हो।

   पट्टादार अगर पट्टा देने के समय किसी मान्यता प्राप्त संस्थान का छात्र रहा हो और उसकी उम्र 25 वर्ष से अधिक न हो, मानसिक या शारीरिक अपंगता का शिकार हो, जेल में बंदी हो या भारतीय सेना की सेवा में हो तो ऐसे किसान बेदखल भी किए जा सकते थे;

अथवा

5. गुजारेदार हो, जब तक उसे गुजारा पाने का हक हो;
6. ग्राम सभा या जिलाधीश द्वारा चरागाह भूमि, असमतल भूमि और अनियमित कृषि की या अन्य किसी प्रकार की भूमि का काश्तकार मान लिया गया हो।

आसामी को वंशानुगत अधिकार तो थे, मगर अंतरण के अधिकार नहीं थे।

अधिवासी

जो काश्तकार भूस्वामी की मर्जी और सुविधा पर जमीन जोत रहे थे, या फिर परम्परा या अनुबंध के अनुसार खेती कर रहे थे, उन्हें अधिवासी कहा गया तथा जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून लागू होने के साथ ही अगले पांच वर्षों की अवधि के लिए काश्तकारी के उनके हक को सुनिश्चित किया गया। उनके अधिकार वंशानुगत नहीं थे और न ही उन्हें भूमि के अंतरण या पट्टे पर उठा देने की अनुमति थी। इन सीमित अधिकारों वाले काश्तकारों की मुख्य श्रेणियां इस प्रकार थीं—

स्थायी अधिकार वाले अधीनस्थ काश्तकार, उन जमींदारों जो 250 रुपये

या इससे कम सालाना भू-राजस्व चुकाते थे; के सीर और खुदकाश्त (पट्टा दवामी या इस्तमरारी वाले को छोड़कर) वाले काश्तकार, लगानमुक्त अनुदानग्राहियों या कम लगान चुकाने वालों के अधीनस्थ काश्तकार और पट्टे पर भूमि जोतने वाले शिकमी काश्तकार जिनकी काश्तकारी की अवधि पांच वर्ष से अधिक नहीं थी। इस श्रेणी में वे लोग भी शामिल किए गए जो बिना इजाजत के भूमि का उपयोग कर रहे थे या पट्टा लिखाए बिना खेती कर रहे थे। ये सभी लगभग वही श्रेणियां थीं जिन्हें खतौनी के भाग-II में सूचीबद्ध किया गया था (देखें : उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन समिति का प्रतिवेदन, भाग-II, तालिका 6, पृष्ठ 8)।

सरकार द्वारा निर्धारित समय-सीमा के भीतर अधिवासियों का अधिकार था कि कानून लागू होने के पांच साल बाद, मुआवजे की निर्धारित रकम चुका कर सीरदार या भूमिधर बन जाएं। इसमें विफल रहने पर वे अपनी जोतों से बेदखल किए जा सकते थे।

अक्टूबर 1954 में जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून में एक संशोधन करके सभी अधिवासियों को सीरदार का दर्जा दे दिया, जो संख्या में 50 लाख थे। ऐसा करते हुए इस तथ्य पर गौर नहीं किया गया कि उनके भूस्वामी सीरदार थे या भूमिधर। उन्हें इन अधिकारों की प्राप्ति के लिए कोई रकम नहीं चुकानी थी। सीरदार की हैसियत से वे पिछली दरों के अनुसार लगान चुकाते रहे और लगानों के इन्हीं भुगतानों से राज्य ने जमींदारों को मुआवजा दिया। लेकिन जैसा कि आगे स्पष्ट हो जाएगा, चौधरी चरण सिंह द्वारा किसानों की एक और लड़ाई अभी लड़ी जानी थी। निर्धन लोगों को यही दर्जा दिलाने के लिए ही नहीं, बल्कि यह सुनिश्चित करने के लिए भी कि भू-स्वामियों और जमींदारों को काश्तकारों की भूमि के पुनर्ग्रहण का अधिकार न मिले। अब इस लड़ाई जिसके राजनैतिक परिणाम सामने आने लगे थे।

ऊपर उल्लेखित चारों श्रेणियों के किसानों के लिए उपलब्ध क्षेत्र के आंकड़े बतायेंगे कि इनका फैलाव कहां तक था। उदाहरण के लिए, जोत की औसत मात्रा प्रति भूमिधर 3.4 एकड़ थी। वस्तुतः जमींदारों के कब्जे वाली बिना किसी को दी गई जोतें ही 250 रुपये से कम भू-राजस्व देने वालों के मामले में औसतन 3.17 एकड़ और 10,000 रुपये से अधिक भू-राजस्व देने वालों के मामले में औसतन 245 एकड़ थी। जहां तक सीरदारों का सवाल है।' उनकी जोत का औसत अंदाजन 2 एकड़ था। उनमें जमींदारी उन्मूलन के पहले से औसतन 0.5 एकड़ वाले बगीचेदारों से लेकर औसतन 2.66 एकड़ वाले स्वामित्व रहित काश्तकार शामिल थे। फिर, प्रत्येक समूह के भीतर भी भिन्नताएं थीं। आसामी और अधिवासी की जोत का औसत लगभग एक एकड़ था, जिसमें लगान मुक्त

अनुदान ग्राहियों के अधीनस्थ काश्तकारों के 2/3 एकड़ औसत से लेकर शिकमी काश्तकारों के एक एकड़ से कुछ अधिक का औसत भी शामिल है।

जिन सीरदारों ने अपने लगान की 10 गुना रकम सरकारी खाते में जमा कर दी, वे उस रकम में 50 प्रतिशत छूट पाने के अधिकारी हो गए जो भू-राजस्व के रूप में सरकार को अभी चुकाई जानी थी, और वे भूमिधर के स्तर में भी प्रोन्नत हो गये। भूमिधारी या जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कोष के नाम से जानी जाने वाली यह योजना सितम्बर 1949 में जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून के अमल में आने से पहले ही चालू हुई थी। राष्ट्रीय योजना आयोग ने अन्य राज्यों द्वारा इसे अपनाए जाने की सिफारिश की थी और कई राज्यों ने इसे अपनाया भी। यह योजना कुल मिलाकर भूमि उपयोग विधेयक पर आधारित थी, जिसे चरण सिंह ने 1939 में व्यवस्थापिका सभा के एक गैर सरकारी सदस्य की हैसियत से तैयार किया था।

काश्तकार जल्द-से-जल्द लाभ उठा सकें या जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार विधेयक के फलस्वरूप होने वाले लाभों से वंचित न रह जाएं, इस उद्देश्य से अग्रिम कार्रवाई के तौर पर विधायिका ने 1949 के खेतिहर काश्तकार (विशेषाधिकार अधिग्रहण) कानून संख्या × को पारित किया।

फिर चूंकि जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार विधेयक, जो अभी विधायिका की ही कसौटी पर था, जमींदारों के हितों को पूरा करता था। ऐसी स्थिति में अनभिज्ञ लोगों को भरमाने के लिए उनकी तरफ से धुआंधार प्रचार प्रत्याशित था, इसीलिए चरण सिंह ने मुख्यमंत्री को दिए गए अपने 22 अगस्त 1949 के नोट के अनुरूप जमींदारी उन्मूलन प्रचार अभियान का आयोजन किया। यह अभियान सार्वजनिक सभाओं, सूचना विभाग की एजेंसियों और सरकार तथा प्रदेश कांग्रेस कमेटी में मौजूद, उनके सहयोगियों की सहायता से चलाया गया। इस अभियान का उद्देश्य देहात के लोगों को जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार विधेयक के प्रावधानों की, उनके अधिकारों और कर्तव्यों की तथा पूरे सामाजिक ढांचे पर पड़ने वाले इसके प्रभावों की जानकारी देना और सम्बद्ध समूहों के भ्रामक प्रचार के खिलाफ खड़े होने के लिए उन्हें तैयार करना था।

तमाम परती जमीनें (पेड़-पौधे सहित, मगर स्वामित्व रहित लोगों द्वारा लगाए गए पेड़ों को छोड़कर जो उन्हीं के अधिकार में रहेंगे), आबादी की जगहें या गोचर भूमि, रास्ते या सड़कें, पोखर-तालाब या नौका घाट, खलिहान भूमि या हाट-बाजार (भूमिधर की कृषि भूमि पर लगने वाले बाजार को छोड़कर) अर्थात् बिल्कुल निजी अधिकार और उपयोग की कृषि भूमि, बाग-बगीचों, घरों या कुओं

के अलावा सारी जमीनें राज्य ने अधिगृहीत कर लीं। पंचायत राज कानून के अधीन ग्राम समुदाय को कुछ न्यायिक और प्रशासनिक अधिकार पहले ही सौंप दिए गए थे। एक 'गांव समाज नियम पुस्तिका' (मैनुअल) प्रकाशित की गई जिसमें पंचायतों को सौंपी गई भूमि से सम्बन्धित उनके अधिकारों और कर्तव्यों का पूरा ब्यौरा था। यह नियम पुस्तिका दूसरे राज्यों के लिए भी आदर्श बन गई।

सरकारी रिकार्ड के अनुसार 1952 में जमींदारी प्रथा की समाप्ति के बाद निजी स्वामित्व वाली फालतू (परती) भूमि, बंजर भूमि, वन भूमि और सार्वजनिक उपयोग की 48 लाख हैक्टेयर भूमि राज्य की हो गई। इसमें से 8 लाख 80 हजार हैक्टेयर भूमि वन रोपण के लिए वन विभाग के नाम कर दी गयी। शेष 39 लाख 20 हजार हैक्टेयर भूमि वितरण के लिए गांव सभाओं को सौंपी गयी। पंचायतें, जो कि गांव सभाओं की कार्यकारिणी समितियां हैं, भूमि प्रबंधन के लिए उत्तर प्रदेश पंचायत राज कानून के तहत उपसमितियां गठित करती हैं। 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के संवाददाता ने 13 सितम्बर 1973 के अंक में लिखा—

> "फिर भी ये उपसमितियां ब्राह्मणों और ठाकुरों के परम्परागत भू-स्वामी वर्ग के प्रतिनिधियों के प्रभुत्व और नियंत्रण में रहीं। यह ताज्जुब की बात नहीं कि भूमि के आवंटन में प्रभावशाली ब्राह्मण और ठाकुर प्रधानों और उनके समर्थकों ने हरिजनों के मुकाबले अपने रिश्तेदारों और इष्ट-मित्रों को प्रमुखता दी। हरिजन प्रधान तो कहीं-कहीं और गिने-चुने ही थे।"

राजस्व विभाग के अधिकारियों और भूमि प्रबन्ध उप-समितियों की मिली-भगत से ज्यादातर सामुदायिक भूमि ब्राह्मणों और ठाकुरों द्वारा हड़प ली गयी। उनके द्वारा सत्ता का दुरुपयोग इतना स्पष्ट था कि कांग्रेस मंत्रिमंडल ने 1 अक्टूबर 1964 और 30 सितम्बर 1967 के बीच दिए गए, 1,00,000 पट्टों की जांच का फैसला किया और पाया कि उनमें से 90 प्रतिशत में अनियमितता बरती गयी थी।

नागरिक आचार संहिता 1982 के तहत किसानों के घर और मकान (बैलगाड़ी आदि सहित) देशभर में पहले से ही रुपये की उगाही के लिए होने वाली कुर्की-नीलामी से मुक्त थे। उत्तर प्रदेश में अब बंधक आदेश से भी उन्हें छूट दे दी गयी।

राज्य के कुछ क्षेत्रों में, खासतौर से शहरों में, 'जेरि-चेहरुम' की एक प्रथा थी। इसके अन्तर्गत मकान मालिक या किराए पर उठाने वाले पट्टादाता को, मकान बेचे जाने की स्थिति में, यह अधिकार होता था कि वह पट्टादार-बिक्रेता या खरीददार से खरीद-मूल्य का एक भाग वसूल करे, जो आमतौर पर एक चौथाई होता था। यह प्रथा बन्द कर दी गयी।

जहां तक कारखाने, स्कूल और अस्पताल के लिए या अन्य उद्देश्य से भूमि

के अधिग्रहण का सवाल है, चरण सिंह ने 1949 में उत्तर प्रदेश की 'भूमि अधिग्रहण नियम पुस्तिका' में यह प्रभावी नियम शामिल करा दिया कि निर्दिष्ट स्थल से आधा मील के दायरे में अगर ऊसर या परती जमीन उपलब्ध हो तो कोई कृषि भूमि अधिगृहीत नहीं की जाएगी। काफी देर से यानी पन्द्रह वर्षों के बाद, भारत सरकार ने भी भूमि अधिग्रहण कानून में एक संशोधन करके इसी का अनुसरण किया।

पूर्व-क्रय-कानून के अन्तर्गत भू-स्वामी को अधिकार था कि अपने भागीदार द्वारा बाहरी आदमी के हाथ बेची जाने की स्थिति में वह उसका पूर्व क्रय कर ले। इस कानून को भी निरस्त कर दिया गया। यह कानून अनेक झगड़े-फसादों और भ्रष्टाचार की जड़ था, इसके निरस्त होने से किसानों को भारी राहत मिली।

जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून के खण्ड 198 में यह प्रावधान था कि मान्यता प्राप्त शिक्षण संस्थान और कृषि सम्बन्धी जानकारी देने वाली संस्था के बाद गांव में यह पहला अधिकार भूमिहीन श्रमिकों को ही होगा कि वे भूमि प्रबंधन समिति द्वारा खण्ड 195 या 197 के तहत खेती के लिए जमीन प्राप्त करें। साथ ही, जहां अन्य आवेदकों और आवंटियों के लिए पुश्तैनी दरों के हिसाब से दस गुना लगान के बराबर रकम जमा करना जरूरी था, वहीं अनुसूचित जातियों के सदस्य ऐसी कोई रकम चुकाने के लिए बाध्य नहीं थे। इस खण्ड के नियमों में यह प्रावधान था कि भूमि प्रबंधन समिति द्वारा आबादी की जगहों के आवंटन में भूमिहीन खेत मजदूरों को प्राथमिकता दी जाए। जोतों की चकबन्दी के कानून 1953 में भी उद्देश्यों का ब्यौरा देते समय यह प्रावधान रखा गया था कि गांव में हरिजनों और भूमिहीन खेत मजदूरों के लिए, उनकी आबादी के विस्तार के उद्देश्य से, भूमि अलग रखी जाए।

चरण सिंह की अध्यक्षता वाली प्रस्ताव समिति द्वारा मूलतः प्रस्तावित और नैनीताल में 12 से 17 मई, 1949 तक चली मंत्रिमंडल की बैठकों में स्वीकृत, जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार विधेयक में मोटे तौर पर यह प्रावधान था कि सीर और खुदकाश्त भूमि के ऐसे किसी भी किसान को, जिसे मौजूदा कानून के तहत शिकमी काश्तकार का दर्जा दिया गया हो या 250 रुपये या इससे कम भू-राजस्व चुकाने वाले जमींदारों के (बड़े जमींदार तो सीधे सीरदार घोषित किये जा चुके थे) किसी भी अधिवासी को (भले ही वह अनधिकृत हो), तथा काश्तकार के काश्तकार यानी किसी भी शिकमी काश्तकार को भूमि से बेदखल नहीं किया जाएगा। उपर्युक्त निर्णय लेते समय मंत्रिमंडल ने इस दावे को स्वीकार कर लिया था कि 'अनधिकृत काश्तकारों' में से कम-से-कम 95 प्रतिशत वस्तुतः असली काश्तकार थे, लेकिन जमींदार और ग्राम पटवारी की सांठगांठ के चलते राजस्व के खातों में उन्हें अनधिकृत काश्तकार का दर्जा दे दिया गया था।

प्रांतीय शोषित संघ, जो पूर्वी उत्तर प्रदेश के बिल्कुल पिछड़े तबकों और हरिजन शोषितों के संगठन के रूप में तेजी से उभर रहा था, ने सीर, खुदकाश्त और शिक्मी काश्तकारों के भूमि सम्बन्धी अधिकार को सुनिश्चित करने की मांग उठाई। प्रा० शो० सं० की यही एक आर्थिक या भूमि सम्बन्धी मांग थी। जून 1949 में इलाहाबाद जिले के भीतरी अंचल में आयोजित एक सार्वजनिक सभा में जिसमें चरण सिंह मौजूद थे, यह घोषणा की गयी कि कांग्रेस ने सभी अधिवासियों (तथाकथित 'अनधिकृत' अधिवासी समेत) को जमींदारी उन्मूलन कानून लागू किए जाने के पांच वर्ष बाद भूमिधारी या सीरदारी का दर्जा दिये जाने का प्रस्ताव किया है। इस घोषणा ने बिजली की तरह असर दिखाया। परिणाम यह हुआ कि शोषित संघ तो बिल्कुल विघटित ही हो गया। संघ के कार्यकर्ताओं के लिए अब कोई शिकायत बाकी नहीं रह गयी थी तथा उनमें से काफी लोग भूमि सुधार के क्रांतिकारी स्वरूप से आकर्षित होकर कांग्रेस में शामिल हो गए। लेकिन जल्दी ही यह बात साफ हो गयी कि ऊंची जातियों से आने वाले कांग्रेसी नेताओं ने, जिनका पूरे प्रदेश संगठन पर व्यापक नियंत्रण था, इस घटनाक्रम का स्वागत नहीं किया।

जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार का जो विधेयक 7 जुलाई 1949 को विधायिका में पेश किया गया, उसमें यह प्रावधान (धारा 237) भी था कि सरकार द्वारा अधिसूचित जिलों में जिस बिचौलिए (जमींदार) के पास 6.25 एकड़ से कम निजी जोत भूमि होगी, उसे अधिवासी से इतनी भूमि ले लेने का अधिकार होगा जिसे मिलाने पर उसकी जोत भूमि का रकबा 6.25 एकड़ हो जाए, इस शर्त पर कि वह खाली या परती जमीन को (जो ग्राम समाज को सौंप दी गयी या दी जाने वाली थी) अपनी जोत भूमि में मिलाकर इस कमी को पूरा नहीं कर पाएगा।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, सभी तरह के काश्तकारों की बेदखली 1946 से ही स्थगित थी। जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार विधेयक के 'प्रवर समिति' को सौंपे जाने के बाद राजस्व मंत्री ठाकुर हुकुम सिंह ने यह प्रस्ताव रखा कि कम-से-कम उन्हें तो सीधे बेदखल किया ही जाए जो अनधिकृत हैं, लेकिन प्रवर समिति इससे सहमत नहीं हुई। फिर भी उनकी भावना का ख्याल रखते हुए प्रवर समिति ने, चरण सिंह की अनिच्छा के बावजूद, मान लिया कि 6.25 एकड़ की ऊपर उल्लिखित सीमा बढ़ाकर 8 एकड़ कर दी जाए। इस तरह जमींदार के बदले, बेदखल रह गये अधिवासी, जो अधिक से अधिक यही कर सकते थे कि ग्राम समाज से भूमि प्राप्त कर अपनी क्षतिपूर्ति करें।

जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार विधेयक में अधिवासियों की बेदखली पर रोक और आगे के लिए जमीन को शिक्मी को प्रतिबंधित किये जाने से

सम्बंधित जो ये दो प्रावधान थे, उनकी कुछ कांग्रेसियों द्वारा कड़ी आलोचना हुई, खासतौर से ऐसे कांग्रेसियों द्वारा जो राज्य के पूर्वी जिलों के थे। राज्यव्यापी कार्यक्रम के तहत अक्टूबर 1949 में जो क्षेत्रीय सम्मेलन वाराणसी में हुआ, उसमें इस मामले को लेकर चरण सिंह पर तीखे प्रहार हुए। कारण साफ था कि उस कमिश्नरी के (राज्य के अन्य अधिकांश मध्यवर्ती क्षेत्रों के भी) ज्यादातर कांग्रेसी हमारे समाज के उच्चतर वर्गों से आये थे, जो खासतौर से या तो राजपूत थे या ब्राह्मण। वे आम तौर से अपनी निजी जमीनों पर (जिन्हें राजस्व खातों में सीर या खुदकाश्त के रूप में दर्ज किया गया था) खुद खेती नहीं करते थे और उसे अनुसूचित या पिछड़ी जाति के लोगों को बटाई पर दे देने के आदी थे या फिर खेत मजदूरों को जमीन का एक या दो टुकड़ा देकर अस्थायी काश्तकार बना देते थे। राज्य के मध्यवर्ती और पूर्वी भागों से आने वाले समाजवादी दल के सदस्य तक भविष्य के लिए शिक्मी या बटाईदारी पर रोक के प्रावधान से खिन्न थे। यह बात देवरिया जिले के प्रजा समाजवादी विधायक श्री रामेश्वर लाल द्वारा पेश किये गए उस प्रस्ताव से स्पष्ट हो जाती है, जिसे 13 सितम्बर 1955 को कार्यसूची में शामिल किया गया था। यह प्रस्ताव राज्य सरकार को आदेश करता था कि वह एक नया कानून बनाये या मौजूदा कानून में ऐसा संशोधन करे कि अगर पट्टादार या बंधक दाता के पास 3.25 एकड़ से अधिक जमीन हो तो काश्तकार या बंधक ग्राही का जमीन पर कोई हक न बने।

> दस साल बाद, अर्थात् 17 नवम्बर 1965 को प्रजा समाजवादो दल के नेता श्री गेंदा सिंह ने, जो कांग्रेस में शामिल हो गए थे और मुख्यमंत्री श्रीमती सुचेता कृपलानी द्वारा कृषिमंत्री नियुक्त किए गए थे, श्रोमती कृपलानी के उस प्रस्ताव का बहुत ही जोरदार समर्थन किया जिसमें सभी भूमिधरों और सीरदारों को, बिना यह विचार किए कि उनके पास कितनी जमीन है तथा वे किसी तरह की अपंगता के शिकार हैं या नहीं, यह अनुमति दे दी गई थी कि वे अपनी जमीन खेती करने के लिए दूसरों को दे सकते हैं।

इससे साफ है कि जब मनुष्य के अपने या अपने वर्ग के हित का सवाल सामने आता है तब राजनैतिक आदर्श प्रासंगिक नहीं रह जाते। यहां भूमि सुधार के मामले में दोनों तरह के हित एक-दूसरे से घुलमिल गये थे।

जमींदारी प्रथा कहीं पुनः सिर न उठाए, इस बात को दृष्टि में रखते हुए कानून का ढांचा इस तरह बनाया गया कि भविष्य में किसी भूखंड पर स्वामित्व और दखल को दो व्यक्तियों के बीच अलगाया नहीं जा सके। इस नये ढांचे के अन्तर्गत अगर कोई जोतदार अपनी जमीन बेच देता है या भू-राजस्व, तकावी या सहकारी

समिति के ऋण की, अथवा अगर वह भूमिधर है तो निजी क्षेत्र के ऋण की अदायगी नहीं होने की स्थिति में उसकी नीलामी होने देता है, तो खरीदार का उस पर दखली अधिकार भी हो जाएगा। बेचने वाले को पहले की तरह उस पर दखल या कब्जा बनाए रखने का कोई अधिकार नहीं होगा। जोतदार को यह अनुमति नहीं होगी कि वह भोगाधिकार के साथ अपनी जमीन गिरवी रखे अथवा न ही उसे यह अनुमति होगी कि वह जमीन किसी को बटाई पर दे दे, अगर वह शरीर से समर्थ और मन से स्वस्थ है। ऐसा वह तभी कर सकेगा जबकि वह भारतीय सेना में नौकरी कर रहा हो या जेल में सजा काट रहा हो या मान्यता प्राप्त संस्थान में शिक्षा पा रहा हो लेकिन 25 वर्ष की आयु पूरी न कर पाया हो। अगर कोई भूमिधर ऐसा करेगा तो उसका पट्टा रद्द हो जाएगा। अगर वह सीरदार हुआ तो उसे और उसके पट्टादार को ग्राम समुदाय के या ग्राम समुदाय के असफल रहने पर, कलक्टर के आदेश से बेदखल किया जा सकेगा, फिर भी भूमिधर और सीरदार को यह अनुमति थी कि वे भागीदारी के आधार पर खेती कर सकें।

इसके अलावा यह सुनिश्चित करने के किए कि भूमि फिर से मुट्ठी भर लोगों के हाथों में न केन्द्रित होने लगे, चरण सिंह ने बाद में यानी 1958 में जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून में संशोधन का यह प्रावधान रखा कि (प्रारम्भ में निर्धारित 30 एकड़ की जगह) कोई भी व्यक्ति अपनी पत्नी (या अपने पति) और नाबालिग बच्चे सहित भविष्य में 12.5 एकड़ या 20 मानक बीघे से अधिक जमीन हासिल नहीं कर सकेगा, जिसमें वह जोत भी शामिल होगी जो पहले से उसके पास थी (परिवार की इस अवधारणा को बाद में लगभग पूरे देश में अपनाया गया)।

आगे चलकर छोटे-छोटे जोत-क्षेत्र और भी टुकड़ों में न बंटते जाएं, इस उद्देश्य से जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून में 1954 के संशोधन के अनुसार यह परिवर्तन किया गया कि संयुक्त जोतदारी या उस जोत क्षेत्र को, जो आकार में 3.125 एकड़ या पांच मानक बीघे से अधिक न हो, कानूनी अदालत के जरिए विभाजित नहीं किया जा सकेगा। शुरू में यह 6.25 एकड़ था। अगर भागीदारों की आपस में न बने और उनमें से कोई या सभी अदालत में चले जाएं, तो उन्हीं के बीच जमीन की नीलामी होगी और उनमें से सिर्फ किसी एक के हाथ जमीन बेच दी जाएगी। जिन क्षेत्रों में जोतों की चकबंदी हो गई थी, वहां के लिए यह कानूनी व्यवस्था की गई कि अगर जमीन पड़ोसी किसान के बदले किसी और को बेची गई हो और वह बेचने वाले के उस 'चक' का हिस्सा हो जिसका आकार 3.125 एकड़ से कम हो, तो पूरे 'चक' की ही बिक्री होगी। अगर पड़ोसी

किसान खरीद रहा हो तो बेची जाने वाली भूमि के रकबे पर कोई पाबंदी नहीं होगी।

जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के फलस्वरूप राजस्व की मांग जहां 9.2 करोड़ से बढ़कर 22.3 करोड़ रुपये हो गई, वहीं सरकारी खजाने पर पूर्ववर्ती जमीदारों को मुआवजे और पुनर्वास अनुदान के भुगतान का बोझ आ पड़ा। प्रत्येक जमींदार को अपनी वास्तविक परिसम्पत्तियों के आठ गुना के बराबर मुआवजा राज्य द्वारा गारंटीकृत बांडों के रूप में प्राप्त करने का अधिकार था, लेकिन छोटे जमींदारों को पुनर्वास अनुदान भी दिया गया। पुनर्वास अनुदान की रकम छोटे जमींदारों द्वारा चुकाई जाने वाली भू-राजस्व की रकम के प्रतिलोमी अनुपात में अलग-अलग होती थी। बिचौलिए की कुल आय में से मूल्यांकित भू-राजस्व की रकम, अगर देय हो तो कृषि आयकर की रकम, स्थानीय करों और जमींदारी प्रथा के उन्मूलन से पहले चुकाए जाने वाले उपकरों की रकम तथा प्रबंध लागत और अप्राप्य बकाया लगान का हिसाब पूरा करने के लिए सकल परिसम्पत्तियों के 15 प्रतिशत के बराबर की रकम घटाकर उनकी वास्तविक परिसम्पत्तियां निर्धारित की गई थीं।

लाखों जमींदारों के मुआवजे और पुनर्वास अनुदान के निर्धारण और भुगतान के लिए एक कम खर्चीली, साफ-सुथरी और प्रभावी मशीनरी गठित की गई थी, जिसने रिकार्ड समय में अपना काम पूरा कर लिया। भू-राजस्व की वसूली के लिए भी एक मशीनरी गठित की गई थी जो तभी से बहुत कम लागत पर और बिना किसी बाधा के सुचारू रूप से अपना कार्य कर रही है।

एक टिप्पणीकार ने लिखा :

मुआवजा सूचियां तैयार करना अपने आप में एक बहुत ही बड़ा काम है। अकेले उत्तर प्रदेश में ही लगभग एक करोड़ मुआवजा सूचियां तैयार करनी होंगी। ऐसे काम की जटिलता को कम करके नहीं आंका जाना चाहिए, जबकि पिछले दस सालों के या उससे भी पुराने रिकार्ड देखे जाने हैं। जमींदारों द्वारा किए गए संदिग्ध अनुबंधों की सरकार द्वारा जांच की जानी है। जमीनें काश्तकारों के नाम कर देने से सम्बन्धित काम तो और भी बड़ा काम है। जिला अदालतों और उच्च न्यायालयों में चूंकि हर कदम पर अपील की व्यवस्था है, इसलिए वहां शिकायतों और विवादों का तांता लगा रहेगा। प्रशासन को यह भी तय करना होगा कि जमींदारों से एक साथ निपटा जाए या फिर धीरे-धीरे (देखें—चरण सिंह, रीसेंट ट्रेंड्स इन एग्रेरियन रिफॉर्म्स, दिल्ली, आत्माराम एण्ड संस, 1962, पृ० 169)।

पूर्ववर्ती जमींदारों या बिचौलियों को (जैसा कि उन्हें जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून में कहा गया) सूदखोरों के चंगुल से छूटने में सहायता

पहुंचाने के उद्देश्य से एक अलग उपाय किया गया और ऋण कटौती कानून के तहत उनके ऋणों में उसी अनुपात में कमी कर दी गयी, जिस अनुपात में उन्होंने मुआवजे की रकम प्राप्त की थी। वह रकम उनकी जमीनों के यू० पी० एनकम्बर्ड इस्टेट्स एक्ट, 1934 के अनुसार निर्धारित मूल्य के आधार पर तय की गयी थी। अतः आम लोगों की भाषा में 60 से 80 प्रतिशत तक उनके ऋणों में कमी की गयी थी। फिर इस कम की गयी रकम की वसूली की कार्यवाही के लिए भी यह प्रावधान रखा गया कि वह पूर्व-जमींदार को भुगतान की जाने वाली मुआवजे और पुनर्वास अनुदान की रकम के सिर्फ तीन-चौथाई भाग पर ही लागू होगी। सरकार द्वारा अधिगृहीत भू-सम्पत्ति के अनुसार निर्धारित डिग्री की रकम से ऋणदाता को अगर संतोष नहीं होता तो भी वह पूर्व-जमीदार की भूमिधारी या सीरदारी भूमि पर अपना दावा नहीं पेश कर सकता था।

फिर भी ऋण अगर आरक्षित होता और ऋणदाता अपने ऋणी के मुआवजे या पुनर्वास पर दावा करने का निश्चय करता तो डिग्री के समायोजन के उद्देश्य से नीलाम किए गए बांड का मूल्यांकन यू० पी० एनकम्बर्ड इस्टेट्स एक्ट के तहत किया जाता, जिसका ऊपर उल्लेख हो चुका है। इसका अर्थ है कि डिग्री के निपटाने में बेचे गए बांडों के हर रुपये का ढाई से पांच गुना तक अधिक मूल्य आंका गया।

जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून निजी जमीनों की तरह सार्वजनिक न्यासों (ट्रस्टों) के स्वामित्व वाली जमीनों पर भी लागू हुआ, चाहे वे न्यास धर्मार्थ हों या जनसेवी। ऐसा इसलिए कि उपर्युक्त न्यासों और संस्थानों के काश्तकारों को भी निजी जमीनों के काश्तकारों की तरह ही भूमि सुधारों का लाभ मिले। फिर भी लोकहित की सुरक्षा की दृष्टि से राज्य सरकार ने उन संस्थानों के लिए वार्षिक अनुदान निश्चित कर दिए। जो मुआवजा पाने के वे अधिकारी थे, वह तो उन्हें मिला ही। वार्षिक अनुदान की रकम सम्बद्ध न्यास की सकल परिसम्पत्तियों के मूल्य में से मुआवजे के ढाई प्रतिशत के हिसाब से जोड़ी गई रकम को घटा देने के बाद बची रकम के बराबर थी।

जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून में यह व्यवस्था भी थी कि भूमिधरों और सीरदारों द्वारा चुकाए जाने वाले भू-राजस्व अगले चालीस वर्षों तक अपरिवर्तित रहेंगे। यहां यह चर्चा अप्रासंगिक न होगी कि दस साल बाद यानी 1962 में तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री चन्द्रभानु गुप्त ने जब इसमें 50 प्रतिशत वृद्धि की पहल की तो चरण सिंह ने, जो उस समय कृषिमंत्री थे, उसका तीव्र विरोध किया तथा मुख्यमंत्री के पास 19 सितम्बर 1962 को एक गोपनीय ज्ञापन देते हुए अपने विरोध के पक्ष में बौद्धिक तर्क पेश किए। उस ज्ञापन के आरम्भिक अनुच्छेद इस प्रकार हैं: तीसरी पंचवर्षीय योजना की वित्तीय व्यवस्था के लिए

राज्य सरकार ने लैंड होल्डिंग बिल पेश किया है, जिसका उद्देश्य जोतदारों द्वारा देय मौजूदा भू-राजस्व में 50 प्रतिशत की वृद्धि करना है। फिर भी यहां पांच ऐसे सबल कारण दिए जा रहे हैं कि क्यों राज्य सरकार को यह कदम नहीं उठाना चाहिए—

(क) किसानों की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं कि उन पर और वित्तीय बोझ लादने का औचित्य सिद्ध हो,

(ख) उत्तर प्रदेश में भूमि पर पहले से ही काफी कर लगे हुए हैं और ग्रामवासी या किसान अपने कर चुकाने के प्रयास में पीछे नहीं हैं,

(ग) यह कर अनावश्यक है, क्योंकि आवश्यक कोष और वांछित नतीजे अन्य उपायों से प्राप्त किए जा सकते हैं,

(घ) यह विधेयक राजनैतिक दृष्टि से कांग्रेस के लिए बहुत ही घातक कदम सिद्ध होगा तथा

(ङ) भू-राजस्व में किसी प्रकार की वृद्धि जनता को दिए गए तथा जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून, 1952 में समाहित इस आश्वासन से मुकर जाना होगा कि राज्य अगले चालीस वर्षों तक भू-राजस्व में वृद्धि नहीं करेगा।

यह मामला जल्दी ही योजना आयोग और नई दिल्ली के कांग्रेसी नेताओं तक जा पहुंचा। चरण सिंह ने 29 सितम्बर 1962 को जो नोट नई दिल्ली भेजा था, वह 45 पृष्ठों का था। उन्होंने इससे पहले श्री चन्द्रभानु गुप्त को साफ बता दिया था कि राज्य सरकार ने अगर किसानों के विश्वास को तोड़ दिया तो वे त्यागपत्र दे देंगे। आखिरकार, उस प्रस्ताव को छोड़ दिया गया।

2

विरोधी आलोचकों को जवाब

उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार विधेयक अब जनता के सामने है। यद्यपि समाचार-पत्रों और जनता के मंच से इसे उत्साहपूर्ण और व्यापक समर्थन मिला है, फिर भी कुछ निहित स्वार्थ वाले या अनभिज्ञ पक्षों द्वारा इसकी आलोचना होती रही है। एक ऐसे दूरगामी कदम का, जो एक पूरे सामंती ग्रामीण ढांचे की विकृतियों को जड़ों से उखाड़ डाले, विरोध बिल्कुल प्रत्याशित है, चाहे वह अज्ञानवश हो या जान-बूझकर—सुविचारित योजना के अनुसार। अब तक जो आपत्तियां उठाई गई हैं उनका यहां उत्तर दिया जा रहा है तथा इसी क्रम में कुछ अन्य सम्बद्ध बातों का भी उल्लेख किया जा रहा है।

अब पाठक जान ही चुके होंगे कि इस विधेयक का उद्देश्य उन सभी जमींदारों को यह विचार किए बिना कि उनकी जमींदारी का आकार क्या है, बेदखल कर देना है जो महज लगान वसूलते हैं; यानी जो राज्य और काश्तकारों के बीच सिर्फ बिचौलिये का काम करते हैं। साथ ही उत्तर प्रदेश में सारी भूमि का कानूनी स्वत्वाधिकार राज्य को सौंपना है तथा उन सभी लोगों को भूमिधारी के अधिकार प्रदान करना है, जिनका भूमि पर काश्तकारी का कानूनी अधिकार है, भले ही आज उनकी काश्तकारी का दर्जा कुछ भी हो; लेकिन काश्तकार या शिक्मी काश्तकार के मामले में जमींदार को चुकाए जाने वाले वार्षिक लगान की क्रमशः 10 या 15 गुना रकम के भुगतान की शर्त रहेगी। यहां यह उल्लेखनीय है कि भूमिधारी को जमीन किसी के नाम कर देने का, अपनी इच्छा के अनुसार उसका किसी भी तरह से उपयोग करने का तथा अपने लगान में आधी कमी लाने का अधिकार होगा। सभी प्रकार की परती जमीनों की देखरेख ग्राम समुदाय करेगा, जिसे पंचायती राज कानून के तहत कुछ निश्चित न्यायिक और प्रशासनिक अधिकार पहले ही निश्चित किए जा चुके हैं। सभी जमींदारों को उनकी शुद्ध आय के आठ गुना के बराबर मुआवजे का भुगतान किया जाएगा तथा जो

जमींदार 5000 रुपये या उससे कम भू-राजस्व चुका रहे हों, उन्हें पुनर्वास अनुदान भी दिए जाएंगे, जो शुद्ध आय के दो गुना से लेकर बीस गुना तक तथा देय भू-राजस्व की रकम के प्रतिलोमी अनुपात से अलग-अलग होंगे। पूरे राज्य में दोनों तरह के भुगतानों की कुल रकम 137.5 करोड़ रुपये तक पहुंच जाएगी।

भविष्य की काश्तकारी

खास स्थितियों में सहकारी कृषि का प्रावधान भी अनिवार्य रूप से विधेयक में रखा गया है और इस हेतु राज्य द्वारा सभी प्रकार की सम्भव सहायता व प्रोत्साहन की गारंटी दी गई है। भविष्य में फिर से जमीन को लेकर आदमी के द्वारा आदमी के शोषण की नौबत न आए, इसके लिए भूमि को पट्टे पर देने या शिकमी करने या भोगाधिकार सहित बंधक रखने पर तथा सयुक्त पारिवारिक जोत के रकबे को 30 एकड़ से आगे ले जाकर उस पर पूंजीवादी खेती शुरू करने पर भी बिल्कुल रोक लगा दी गयी है। इसके उल्लंघन की स्थिति में भूमि को सीधे जब्त कर लिया जाएगा। अलाभकर जोतों की संख्या न बढ़े, इस दृष्टि से दस मानक बीघे या उससे कम रकबे की भूमि को अविभाज्य घोषित किया गया है, साथ ही बड़े आकार की जोतों को कम-से-कम दस बीघे से छोटे टुकड़ों में नहीं बांटा जा सकेगा। अगले 40 वर्षों तक राज्य द्वारा भू-राजस्व को बढ़ाने की दिशा में कोई कदम नहीं उठाया जाएगा। संक्षेप में इस विधेयक के ये ही प्रमुख प्रावधान हैं, जिसमें कुल मिलाकर 310 अनुच्छेद हैं।

जिस दौरान इतने बड़े वैधानिक कदम को उठाने की तैयारियां चल रही थीं, कांग्रेस के विरोधी जोर-शोर से यह प्रचार कर रहे थे कि यह सरकार अक्षम है और इसीलिए प्रस्तावों को तैयार करने में जरूरत से ज्यादा समय लगा रही है, यानी यह संदेहास्पद है कि जमींदारी उन्मूलन के मामले में कांग्रेस सरकार ईमानदार या गम्भीर है। मगर ये आलोचक इस तथ्य को भूल गये कि हमने सिर्फ जमींदारी का उन्मूलन नहीं किया, यानी उसे सिर्फ खत्म ही नहीं किया बल्कि उसकी जगह एक टिकाऊ ढांचे का निर्माण भी किया है, जो वर्तमान की आवश्यकताओं के अनुरूप तथा आने वाले समय की कसौटी पर खरा उतरने वाला है। इस तरह के निर्माण के लिए, खासतौर से ऐसे सामाजिक आधार के निर्माण के लिए, जिससे भावी योजना प्रभावित होने वाली हो, ठोस राजनीतिक दूरदर्शिता और समझदारी की अपेक्षा अत्यावश्यक है। 'जमींदारी उन्मूलन' एक नकारात्मक नारा है, जबकि इस मामले के प्रभारियों ने एक सकारात्मक समाधान सामने रखा है—एक वैकल्पिक भूमि-व्यवस्था।

रूस से तुलना

ऐसे आलोचकों के दिमाग में सोवियत रूस रहा है। लेकिन रूस में जब मौजूदा व्यवस्था को जल्दबाजी में तोड़ दिया गया, तब कोई वैकल्पिक योजना तैयार ही नहीं थी तथा विकल्प तैयार करने में उसे पूरे दस वर्ष लगे। क्रांति-वर्ष 1917 से 1927 तक, जब अंततः सामूहिकीकरण का निर्णय लिया गया, रूसियों को आधा दर्जन बार अपनी भूमि सम्बन्धी नीतियों में कई फेर-बदल करने पड़े थे। इसके चलते गरीबी और बढ़ी और अनावश्यक रूप से राष्ट्रीय क्षति भी हुई। फरवरी 1917 में सारी भूमि कम्यूनों से सम्बद्ध थी और उसे पुराने सिद्धांतों के आधार पर उनके सदस्यों में पुर्नवितरित कर दिया गया था। आठ महीनों के बाद संविधान सभा के चुनावों में किसानों का समर्थन पाने के उद्देश्य से लेनिन ने यह नारा दिया—"जो लूट लिया गया था, उसे लूट लो।" फरवरी 1918 में भूमि पर सभी तरह के निजी स्वामित्व को खत्म कर दिया गया तथा समान अधिकार के सिद्धांत के अनुसार भूमि को श्रमिकों में वितरित कर दिया गया। भूमि के हर तरह के लेन-देन की मनाही कर दी गई। एक वर्ष बाद जब कम्युनिस्टों को लगा कि राज्य सत्ता पर पूरी तरह से उनका नियंत्रण है, तब सारी भूमि मात्र राज्य की सम्पत्ति घोषित कर दी गई और भूमि पर 'सभी तरह के व्यक्तिगत अधिकार' को अलविदा कर दिया गया। विशाल सोवियत राज्य फार्मों, कम्यूनों और संयुक्त खेती के अन्य रूपों को 'समाजवादी ढंग की कृषि प्रणाली विकसित करने की दिशा में सर्वोत्तम साधन' कहा गया, लेकिन यह एक छिद्रयुक्त पतीला साबित हुआ। किसानों पर अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं हुई। अतः मार्च 1921 में 'तथाकथित सम्पन्न किसानों की असली मानसिकता को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के विकास हेतु नई आर्थिक नीति की घोषणा की गई', जिनके बारे में लेनिन ने स्वीकार किया था कि "पिछले तीन वर्षों के दौरान हम उनके इरादों और भावनाओं को बदलने में नाकामयाब रहे हैं।" इतना ही नहीं, अनाज की अनिवार्य उगाही को कम कर दिया गया, रूबल को फिर से चालू कर दिया गया और खुले बाजार में खरीद-बिक्री की अनुमति भी दे दी गई। 1924 में कम्युनिस्ट लोग और भी 'दक्षिण' की ओर झुके तथा सरकार ने अपना पूरा दृष्टिकोण ही बदल डाला। भूमि की कर उगाही नकदी आधार पर तय की गई तथा किसानों को भूमि किराये पर उठाने की, मजदूर लगाने की और कृषि मशीनरी खरीदने की भी अनुमति दे दी गई।

हमने तो यहां एक ऐसी प्रणाली विकसित करने में सिर्फ तीन ही वर्ष लगाए, जो निश्चय ही सरकार के लिए असामान्य दबावों और तनावों के वर्ष थे। हमारे किसानों को यह प्रणाली पूरी तरह से स्वीकार्य होगी; जबकि रूसी प्रणाली दो

दशक से अधिक समय बीत जाने के बावजूद किसानों द्वारा आज भी रद्द की जा सकती है, अगर उन्हें इसकी स्वतंत्रता मिले।

पूंजीपति

एक और आपत्ति भी है कि जिसे उन्मूलन योजना के गुण-दोष से कुछ लेना-देना नहीं है लेकिन जो बात अक्सर कही जाती है, वह यह कि हम पूंजीपतियों के साथ पक्षपात बरत रहे हैं क्योंकि साथ-साथ ही हम उद्योगों का राष्ट्रीयकरण नहीं कर रहे हैं। इसका उत्तर यह है कि कांग्रेस यद्यपि बड़े और बुनियादी उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के लिए बचनबद्ध है, फिर भी पूंजीपतियों और जमींदारों को एक ही श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। पूंजीपति कम-से-कम अधिशेष-मूल्य और अतिरिक्त उत्पादन के विकास में स्वयं भी सक्रिय भूमिका अदा करता है लेकिन जमींदार 'बिना कुछ किए धरे' उस अतिरिक्त उत्पाद और अधिशेष मूल्य में सिर्फ अपनी हिस्सेदारी बढ़ाता जाता है।

दूसरे, औद्योगिक श्रेत्र के सर्वहारा की जीवन-दशा में बुनियादी बदलाव लाने के लिए राष्ट्रीयकरण कुछ नहीं करने जा रहा है, क्योंकि इससे महज उनके मालिक बदलेंगे, निजी मालिकों की जगह राज्य ले लेगा और उन्हें उन्हीं कारखानों में पहले की भांति काम करना होगा, जबकि जमींदारी के उन्मूलन का अर्थ होगा—किसानों के जीवन में बदलाव। फिर, बड़े पैमाने पर खड़े किये गये उद्योग कृषि क्षेत्र में लगे लोगों की तुलना में कुल साढ़े बाईस लाख लोगों को ही रोजगार मुहैया कराते हैं। इसलिए राजनेताओं को आवश्यक रूप से अपना सारा जोर पहले जमींदारी को खत्म करने में लगाना है जो कि राष्ट्रीय जीवन की सबसे बड़ी बुराई है—ठीक उसी तरह जैसे डाक्टर मरीज की अन्य छोटी शिकायतों की तुलना में पहले उस व्याधि का इलाज करता है जिससे वह बुरी तरह ग्रस्त है। अंत में, जब तक हमारे पास प्रशिक्षित तकनीशियन उपलब्ध नहीं होते तथा नैतिक और प्रशासकीय क्षमता के स्तर में निश्चित वृद्धि नहीं हो जाती, तब तक तात्कालिक परिस्थितियों में, राष्ट्रीयकरण के फलस्वरूप उत्पादन में वृद्धि होने के बजाय कमी ही आने की सम्भावना है।

अब जरा उन्मूलन के तरीके पर गौर करें। इतिहास हमें तीन तरीकों की जानकारी देता है। पहला तरीका जापान ने दिया, जहां 1868 में दो सौ पचास प्रमुख सामंतों ने, जिन्हें डियाम्यो कहा जाता था, अपने मालिकाना अधिकार, प्रशासकीय अधिकार और वंशगत उपाधियां स्वेच्छा से सम्राट को सौंप दिये। उन्हें महज उनकी पुरानी जायदादों से होने वाली आय के निश्चित प्रतिशत के भुगतान की गारंटी दी गयी। उनके उदाहरण का अनुसरण किया निम्नतर श्रेणी के सामंतों ने, जो समुराई कहलाते थे। वे संख्या में, 4,00,000 थे। उन्हें पहले राजस्व के

उपभोग की स्वीकृति मिली लेकिन अनेक मामलों में वंशगत सिद्धांत को तिलांजलि दे दी गयी। इन पेंशनों के वार्षिक भुगतान की रकम लगभग 1,20,00,000 पौण्ड हो जाती थी। राष्ट्रीय कोषागार पर यह एक भारी बोझ था लेकिन इस समस्या का समाधान काफी हद तक समुराइयों ने स्वयं कर लिया। वर्ष 1873 में शाही आदेश के अनुसार समुराइयों के वंशानुगत पेंशन के क्रय के लिए छह वर्षों के राजस्व की तथा आजीवन पेंशन के क्रय के लिए चार वर्षों के राजस्व की दरें निश्चित की गई। समुराइयों ने समय की मांग को देखते हुए स्वेच्छा से यह व्यवस्था स्वीकार कर ली तथा मान लिया कि उनकी उपयोगिता का दौर बीत चुका है। सार्वजनिक हित के लिए भूस्वामी सामंतों के ऐसे आत्मोत्सर्ग का उदाहरण कोई अन्य देश प्रस्तुत नहीं कर सकता। इसने जापान में देशभक्ति की ऐसी लहर पैदा की कि छह दशकों की अल्पावधि में ही वह विश्व समुदाय का अग्रणी राष्ट्र बन गया।

दूसरा उदाहरण 1917 की रूसी क्रांति ने प्रस्तुत किया, जहां जर्मनों के साथ युद्ध में रूसी सेनाओं के बुरी तरह मात खाने के बाद काफी तादाद में किसानों ने सशस्त्र विद्रोह कर दिया। भूस्वामियों के सम्भ्रांत वर्ग—'बोयारों' का अत्याचार अपनी सारी सीमाएं तोड़ चुका था। भूस्वामियों के विरुद्ध क्रोधोन्माद उनकी सम्पत्तियों तक जा पहुंचा। बेशकीमती समान, यहां तक कि किसानों के लिए खेती के उपयोग की मशीनें आदि भी नष्ट कर दी गयीं और मवेशियों का निर्ममता से वध कर दिया गया।

तीसरा उदाहरण आयरलैंड, डेनमार्क, जर्मनी, रूमानिया तथा अन्य यूरोपीय देशों द्वारा प्रस्तुत किया गया, जहां जमींदारी प्रथा को तलवार से नहीं बल्कि कानून से खत्म किया गया तथा जमींदारों को मुआवजा दिया गया।

पहले तरीके का दौर बीत चुका है। अगर हमारे जमींदारों ने जापान के मार्ग का अनुसरण किया होता तो कांग्रेस सरकार और पूरे देश ने उन्हें हृदय से सराहा होता। दूसरा मार्ग न तो महात्मा गांधी के विचारों की दृष्टि से वांछनीय है और न ही इस दृष्टि से आवश्यक है, क्योंकि राजनीतिक सत्ता अब स्वयं जनता के हाथ में है। तीसरा और एकमात्र उचित मार्ग हमारे सामने यही रह गया है कि जमींदारी का उन्मूलन कलम के जरिये यानी अहिंसक तरीकों से किया जाए, और अब यही किया जा रहा है।

मुआवजा

अब मुआवजे की बात करें। इस सवाल का उन्मूलन के तरीके से गहरा सम्बंध है। जापान में भूस्वामी वर्ग ने सांकेतिक मुआवजे को स्वीकार कर लिया, क्योंकि वह देश के हित में अपने-आपको मिटाने का निश्चय पहले ही कर चुका

था। रूस में मुआवजे का सवाल उठा ही नहीं; क्योंकि जमींदारी के साथ-साथ जमींदार भी खत्म हो चुके थे और ऐसा कोई बच ही नहीं पाया था जो इसका इरादा करता। जिन अन्य देशों में राज्य द्वारा कानून के जरिये सामंती प्रथा को समाप्त किया गया, वहां तो मुआवजे का भुगतान होना ही था; क्योंकि कानून निश्चित सिद्धांतों पर टिका होता है तथा उसे सभी प्रभावित पक्षों का ध्यान रखना पड़ता है।

जो लोग जब्ती की नीति की वकालत करते हैं, वे आमतौर पर ऐसे सन्दिग्ध उपायों का हवाला देते हैं कि कैसे अतीत में कोई भूमि हथियाई गई। लेकिन पूर्वजों के पाप के लिए पोते-परपोतों को दंडित करने का औचित्य भी संदिग्ध है, क्योंकि इनमें से कुछ ने तो बाद के दौर में स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लेकर अपने पूर्वजों के पापों का प्रायश्चित भी किया है।

आलोचकगण महात्मा गांधी के उन विचारों का हवाला दे सकते हैं और कभी-कभी देते भी हैं जो उन्होंने जून 1992 में श्री लुई फिशर को दी गई अपनी दो भेंट-वार्ताओं के दौरान व्यक्त किये थे। जब उनसे क्रांतिकारी उथल-पुथल के दौरान, जो वस्तुतः अगले अगस्त में ही देश में शुरू हो गयी, किसानों की अपेक्षित भूमिका के बारे में सवाल किया गया तो उन्होंने घोषणा की थी कि वे (किसान) भूमि पर कब्जा कर लेंगे, उन्हें इसकी अपेक्षा नहीं रहेगी कि कोई उनसे ऐसा करने के लिए कहे, तथा मुआवजे का भुगतान तो बिल्कुल नहीं किया जाएगा। फिर ऐसी स्थिति में यह भुगतान क्यों किया जा रहा है? चूंकि महात्मा जी उस क्रांति की बात कर रहे थे, जिसकी ज्वाला विदेशी हुकूमत के साथ-साथ पूरे सामाजिक ढांचे को नहीं, तो कम-से-कम उस मौजूदा भूमि-व्यवस्था का सर्वनाश कर ही डालती, जो विदेशियों के हित में थी। उस समय हम चूक गए और अब इसकी शिकायत हम नहीं कर सकते। फिर भी, यह महात्मा ही थे जिन्होंने दिसम्बर 1945 की बदली हुई परिस्थितियों में चुनाव घोषणा-पत्र का मसौदा तैयार किए जाते समय कांग्रेस हाई कमान को 'उचित मुआवजे' का प्रावधान रखने की सलाह दी थी।

जहां तक दरों का सवाल है, जमींदारों की दलील है कि यह अदालत पर छोड़ दिया जाना चाहिए कि वह उचित दर के बारे में निर्णय ले; लेकिन अगर अदालतें जमीन के हर टुकड़े पर ऐसा निर्णय देने लग जातीं तो फिर जमींदारी उन्मूलन का काम दीर्घकाल तक रुका रहता। हर जगह भूमि के मामले में सारी कार्यवाही विधायिका करती है जिसमें जनता के प्रतिनिधि होते हैं, वही सिद्धांत निरूपित करती है और बताती है कि क्या उचित है।

समाजवादी आलोचक

विधेयक के समाजवादी आलोचकों को इसमें या इसकी योजनाओं के सिद्धांत में कोई बड़ा दोष दिखाई नहीं दिया तो उन्होंने प्रस्तावित मुआवजे की विशालता पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। वे सुझाते रहे कि 'सीर, खुदकाश्त और बाग-बगीचों की जमीनों के मामले में अधिकारों में कटौती करते हुए' भूमि के पुनर्वितरण के आधार पर मुआवजे का भुगतान करना चाहेंगे तथा किसी को भी एक लाख रुपये से अधिक न देने की बात करेंगे। उनके लिए यह उपयुक्त हो सकता है कि जो जी में आये कह डालें, लेकिन उन्हीं के नेता आचार्य नरेन्द्र देव ने जमींदारी उन्मूलन समिति को दिए गए अपने ज्ञापन में ऐसी कोई शर्त नहीं रखी थी। उन्होंने किसी व्यक्ति को दिए जाने वाले मुआवजे की अधिकतम सीमा पांच लाख रुपये रखी थी तथा अनुमान लगाया था कि मुआवजे की कुल राशि 100 करोड़ रुपये होगी। अब यह फैसला पाठकों को करना है कि क्या मुआवजे के भुगतान के साथ बड़े फार्मों में कटौती की कोई प्रासंगिकता है तथा 100 करोड़ और 137.5 करोड़ के बीच खाई क्या इतनी बड़ी है कि इसे सैद्धांतिक विरोध का रूप देते हुए हायतौबा मचाई जाए?

अब जबकि मुआवजे का भुगतान किया जाना है तो केवल दो ही रास्ते हमारे सामने हैं: एक—या तो राज्य किस्तवार बांडों के रूप में भुगतान करे, दूसरा—या काश्तकारों को नकद भुगतान करने के लिए कहा जाए। जो लोग पहले विकल्प की वकालत करते हैं वे भूल जाते हैं कि सभी कराधान चूंकि अंतिम विश्लेषण में उत्पादक पर लागू होते हैं, इसलिए मुआवजा अन्ततः उन काश्तकारों से आना है जो जमीन जोतते हैं और बहुत बड़ी संख्या में राज्य के उत्पादक हैं। आखिर राज्य जादू के करिश्मे से तो मुआवजे का भुगतान नहीं कर सकता।

भूमिधारी के अधिकार

विधेयक यह काश्तकारों पर छोड़ता है कि या तो वे आज ही भुगतान करके बदले में भूमिधारी के अधिकार और साथ-साथ लगान में 50 प्रतिशत छूट प्राप्त कर लें, या मौजूदा लगान को किस्तों में भुगतान करते हुए सीरदारी या सिर्फ जोत के अधिकारों से सन्तोष करें। इस सुसंगत, लेकिन महत्वपूर्ण प्रावधान की आलोचना मुख्यतः इस आधार पर की जाती है कि काश्तकारों के पास इतने साधन नहीं कि वे भुगतान कर सकें। बहुत खूब! अगर उनके पास साधन नहीं, तो कोई उन्हें मजबूर नहीं करेगा, लेकिन उत्तर प्रदेश सरकार मानती है कि यहां का कृषक वर्ग यद्यपि नगरवासियों या निर्माता वर्ग की तरह खुशहाल या अन्य अग्रणी देशों की तरह सम्पन्न नहीं है, फिर भी इतने साधन तो उसके पास हैं ही

कि वह अपने लगान को दस बार में चुका सके। वर्ष 1940 में 290 करोड़ रुपये मूल्य के करेंसी नोट देश में प्रचलित थे, 1945 में यह मूल्य बढ़कर 1180 तक जा पहुंचा, और अब तो यह और भी ऊपर चला गया होगा। हालांकि सच है कि महायुद्ध के दौरान व्यापारियों और उद्योगपतियों ने खूब मुनाफा कमाया, फिर भी नकद करेंसी का एक बड़ा हिस्सा गांवों में भी पहुंच गया है। परिणामस्वरूप 1942 तक, कम-से-कम उत्तर प्रदेश में, ग्रामीण क्षेत्र की ऋण ग्रस्तता लगभग खत्म हो गई थी। यह एक ऐसा तथ्य है जिसकी वे सभी लोग पुष्टि करेंगे जो देहाती मामलों से भलीभांति परिचित हैं।

फिर, आलोचक यह देख पाने में विफल रहते हैं कि किसान को भूमि की कितनी ललक रहती है, यह अनुभव करने के लिए उन्हें किसान होना पड़ेगा कि उसे भूमि का कैसा मोह होता है। भूमि सुरक्षा की भावना का संचार करती है और भविष्य के लाभ की ऐसी गारंटी देती है, जो किसी और तरह की सम्पत्ति नहीं दे सकती। यह एक जीती-जागती अचल सम्पत्ति है। रुपया-पैसा और अन्य परिसम्पत्तियां चुक जाती हैं, लेकिन भूमि वैसी-की-वैसी बनी रहती है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी किसान उस दिन के सपने देखता रहा है जब वह जोती जा रही जमीन को अपनी जमीन कह सकेगा; वही सपना आज साकार होने जा रहा है। अपनी जोत भूमि पर पूरा अधिकार पा जाने से पूर्णता की जो भावना या सन्तुष्टि किसान को मिलती है, उसे क्या रुपये-पैसे या अन्य भौतिक वस्तुओं से मापा जा सकता है? नहीं, ये सब तुच्छ है। भूमिधर होने के लिए वह अपना सब कुछ त्याग सकता है, यहां तक कि अपनी पत्नी के गहने-जेवर भी।

काश्तकार के लाभ

काश्तकार के लाभ को अगर रुपयों में ही आंका जाए तो वह परिणाम की दृष्टि से निश्चित ही अधिक है। मान लीजिए, उसके पास पांच एकड़ भूमि है और वह औसतन 25 रुपये लगान के रूप में चुकाए तो एकमुश्त 250 रुपये का भुगतान कर देने पर भविष्य में उसे सालाना 12.50 रुपये ही लगान चुकाना होगा, जिसमें अगले चालीस वर्षों तक किसी भी हालत में वृद्धि नहीं होगी। इसका अर्थ है कि चालीस वर्षों में वह 500 रुपये कमा या बचा लेगा, जो कि आज भुगतान की जाने वाली रकम का दो गुना है। बैंक दर से 250 रुपये की रकम इस अवधि में सिर्फ 400 रुपये हो पाएगी। फिर, इससे बड़ी बात यह है कि वह आज अपनी भूमि को बेच नहीं सकता और न ही उसकी जमानत पर किसी तरह का ऋण ले सकता है। भूमिधारी के अधिकार प्राप्त करते ही उसकी भूमि की कीमत बढ़कर प्रति एकड़ कम-से-कम 500 रुपये की दर से 7,500 रुपये हो जाएगी। इस योजना से देश को या प्रदेश को भी काफी लाभ होगा।

हमारा उत्पादन आज भी लगभग वही है जो 1939 में था, लेकिन करेंसी तब से चार गुना बढ़ गयी है। अतः मांग और आपूर्ति के नियम के अनुसार कीमतें लगभग चार गुना या वस्तुतः 378 प्रतिशत हो गई हैं। देहातों में उपभोक्ता वस्तुओं की मांग है और हम उसे पूरा नहीं कर सकते।

कृषि और औद्योगिक उत्पादन को आगे बढ़ाने की हमारी योजनाओं के फलीभूत होने में तो पांच से दस साल तक लग जायेंगे। इधर क्रय शक्ति से सम्पन्न उपभोक्ता विदेशी वस्तुओं की ओर बढ़ गये थे, जिससे व्यापार सन्तुलन पर विपरीत प्रभाव पड़ा और पूरे देश को 95 करोड़ रुपये की क्षति उठानी पड़ी। फिर, किस्तवार बांडों द्वारा मुआवजे का भुगतान होने पर अतिरिक्त 137.5 करोड़ रुपये की व्यवस्था करनी पड़ती जिससे बाजार में उल्लेखनीय तेजी आती। इसके विपरीत, किसानों द्वारा नकद भुगतान किये जाने का अर्थ होगा—रुपये का लाखों जेबों से निकलकर वस्तुतः केवल 30.000 जेबों में सिमटना, क्योंकि 250 रुपये से अधिक भू-राजस्व चुकाने वाले जमींदारों की संख्या इतनी ही है। इसका अर्थ है कि जमींदारी उन्मूलन के बाद उपभोक्ता वस्तुओं के खरीददार इतने कम रह जायेंगे कि अब मुद्रा स्फीति होगी और कीमतें भी नीचे चली जायेंगी तथा आर्थिक स्थिति बिगड़ने की जगह और भी उन्नत हो जाएगी।

बांड

भूमि बांड जारी करने का परिणाम होता—राज्य के भविष्य को चालीस वर्षों के लिए बंधक रख देना और मंदी या गिरावट इस तरह आती कि लगान में कमी किये जाने की मांग जोर पकड़ लेती, जिसे किसान मतदाताओं का भारी प्रतिशत देखते हुए दबाना सम्भव नहीं होता। इस मांग के आगे झुकने का परिणाम यह होता कि राष्ट्र निर्माण की गतिविधियों में राज्य की क्षमता घट जाती या जमींदारों के साथ किये गए वायदों से मुकर जाना पड़ता तथा उनके बांडों को अगर पूरी तरह रद्द नहीं तो उनका अवमूल्यन तो कर ही देना पड़ता।

आत्मिक संतुष्टि

इस प्रावधान से आगे चलकर जमींदारों की भावनाओं को भी संतुष्टि मिलनी चाहिए; कम-से-कम बड़े जमींदारों को तो बाजार-कीमत नहीं चुकाई जा रही थी। उनका तर्क था कि उन्हें मिलने वाले मुआवजे को चार दशकों की अवधि तक खींचना उचित नहीं, जबकि उसके रद्द या अवमूल्यन किये जाने की सम्भावना भी सिर पर हो। जमींदारों की दलीलों में दम है, इसलिए उनके साथ रुखाई बरतने की जरूरत नहीं। उन्हें अब जो कुछ भी मिलेगा, नकद मिलेगा; और यह इस योजना की दूसरी अच्छी बात है कि वे अब अपनी रकमें कारों, अल्सेशियन कुत्तों

या रेस के घोड़ों पर बर्बाद नहीं करेंगे, बल्कि उद्योगों में लगाएंगे।

पूंजीपतियों की संख्या में वृद्धि

दूसरी आपत्ति यह उछाली जाती है वह यह है कि इस योजना के फलस्वरूप भूमिधरों के नये रूप में इतने से भी कई गुना पूंजीपति या जमींदार पैदा हो जाएगे, जितने कि उन्मूलित किए जा रहे हैं और इस तरह शोषण का सिलसिला बदस्तूर जारी ही रहेगा। लेकिन, विधेयक पर सावधानी से गौर किया जाए तो तमाम आशंकाएं जाती रहेंगी। उन्मूलन तो जमींदारी का किया जा रहा है, और मालिक-रैयत की प्रथा का किया जा रहा है, भूमि से उनके सारे रिश्तों का नहीं। इसके अधिनियमित होने पर उत्तर-प्रदेश में न कोई रैयत रह जाएगी और न ही ऐसा कोई शिकमी काश्तकार, जिसने कभी किसी तरह के अधिकार का उपभोग नहीं किया था, साथ ही जिसे किसी तरह के अधिकार के आश्वासन नहीं मिले। उन्हें पांच वर्ष बाद भूमिधारी बन जाने का अवसर मिलेगा, क्योंकि किसी को जमीन को बटाई पर उठाने की अनुमति नहीं होगी (शारीरिक दृष्टि से अक्षम व्यक्तियों को छोड़कर जो अपनी अक्षमता की अवधि में ऐसा कर सकते हैं)। सिर्फ अधिकार सौंप देना भूमिधारी को शोषक बना देना नहीं है, क्योंकि वह केवल वही भूमि खरीदेगा या अपने पास रखेगा जिस पर खुद खेती करने का इरादा रखता है। समाज के लिए इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता कि 'क' किसान के रूप में 'ख' की जगह ले लेता है, सरकार को चिन्ता सिर्फ यह है कि भविष्य में कोई शोषक पैदा न हो और इसे दोहरे तौर पर सुनिश्चित किया गया है। भावी जोतों (फार्म) की अधिकतम सीमा निश्चित करके खेतों में काम करने वाले श्रमिकों तक के शोषण को काफी हद तक खत्म कर दिया गया है। उपर्युक्त बातों को देखते हुए भूमिधर को, जो अपनी जमीन का किसान स्वामी होगा, पूंजीपति कहना तथ्यों को तोड़ना-मरोड़ना है। पूंजी बढ़ाते जाना पूंजीपति का असली काम है जो वह नहीं करेगा। और समय-समय पर दूसरों की मदद लेने के बावजूद वह आवश्यक रूप से ज्यादातर शारीरिक श्रम खुद कर रहा होगा।

अलाभकर जोतें

विरोधियों द्वारा यह आलोचना भी बड़े जोर-शोर से की जाती है कि विधेयक में अलाभकर जोतों के समाधान का कोई प्रावधान नहीं है। पाठकों को याद होगा कि भविष्य में अलाभकर जोतें अस्तित्व में नहीं आएं, इसके लिए पूरी सावधानी बरती गई है। इसके अलावा, गांव में सहकारी खेती न होने पर अलाभकर जोत वाला किसान ही ग्राम समुदाय से जमीन प्राप्त करने का पहला अधिकारी होगा। फिर भी, ईमानदारी की बात यह है कि अलाभकर जोतों का अस्तित्व रहेगा ही,

क्योंकि जमीन तो पर्याप्त है नहीं। प्रान्तीय विधान सभा में समाजवादी प्रवक्ता इसके लिए दो समाधान बताते हैं। सभी किसानों में जमीन बराबर-बराबर बांट दी जाए, या कम-से-कम बड़े फार्मों की, यानी पचास एकड़ से अधिक रकबे वाले फार्मों की कटौती की जाए तथा फालतू जमीन अलाभकर जोत वालों में आवंटित कर दी जाए।

पुनर्वितरण

प्रदेश में अभी कम-से-कम 75 लाख किसान परिवार हैं। क्या यह व्यावहारिक प्रस्ताव है कि इन सबको बेदखल कर दिया जाए और फिर सबमें जमीन बराबर-बराबर बांट दी जाए? वैसे, असम्भव तो कुछ भी नहीं है, लेकिन देश अगर दृढ़ता से प्रगति के मार्ग पर बढ़ रहा हो, तब भी ऐसा करने में पचास साल लग जाएंगे और तब तक इसकी शायद जरूरत ही न रहे। फिर भी, मान लीजिए कि इस तरह का पुनर्वितरण सम्भव है और एक ही दिन में ऐसा किया जा सकता है, तो क्या ये बराबर-बराबर कर दी गई जोतें लाभकारी होंगी? आज कृषि योग्य भूमि का कुल क्षेत्रफल 413 लाख एकड़ है, जबकि लाभकर जोतों के बारे में समाजवादी स्वयं जो हिसाब लगाते हैं, उसके अनुसार प्रत्येक परिवार के पास 12.5 एकड़ भूमि होनी चाहिए। इस तरह हमें 100 करोड़ एकड़ भूमि की आवश्यकता होगी। फिर 80 लाख एकड़ को 'कृषि योग्य परती भूमि' के रूप में दर्ज किया गया है, जिसका दरअसल बहुत ही थोड़ा-सा भाग उपयोग में लाया जा सकता है। इस तरह लगभग 475 लाख एकड़ भूमि, जिसकी हमें जरूरत पड़ेगी, हमारे आलोचक महानुभाव कहां-से ले आएंगे?

जहां तक बड़े फार्मों की कटौती का सवाल है, वहां केवल नौ हजार ऐसे जमींदार हैं जिनके पास कुल 9 लाख एकड़ 'सीर' और 'खुदकाश्त' की जमीन है, यानी प्रत्येक के पास औसतन 100 एकड़ जमीन है। इन फार्मों से 4.5 लाख एकड़ भूमि पुनर्वितरण के लिए मिल सकती है, इतनी ही तादाद काश्तकारों के इस आकार के फार्मों की हो सकती है, लेकिन वास्तविक आंकड़े उपलब्ध नहीं है। फिर भी नौ लाख एकड़ का यह अतिरिक्त क्षेत्र कितने फार्मों को लाभकारी बनाने में सहायक हो सकता है? फिर, हमें यह भी याद रखना है कि कम-से-कम दो-तिहाई मौजूदा फार्म अलाभकर हैं। इसके अलावा, अगर हम फार्मों की कटौती का काम शुरू करने का फैसला कर भी लें तो फालतू क्षेत्र के सीमांकन और उसे प्राप्त करने के लिए उत्सुक बहुत सारे लोगों में से कुछ के नाम कर देने का लक्ष्य पूरा करने के लिए हमें अवश्य ही और पांच साल तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। इसलिए मैं इस बात पर पूरी तरह निश्चित हूं कि बड़े फार्मों की कटौती का, जिससे कृषि सम्बन्धी स्थिति में उल्लेखनीय सुधार भी नहीं होता, जमींदारी प्रथा को भलीभाँति समाप्त

करने के उद्देश्य से कुछ लेना-देना नहीं है, और अगर देश हित में यह आवश्यक ही हो, तो इसे सुविधाजनक ढंग से भविष्य में कभी किया जा सकता है।

भूमिहीन श्रमिक

यह आलोचना भी सुनाई पड़ती है कि इस विधेयक में भूमिहीन श्रमिकों के लिए कोई आशाजनक सन्देश नहीं है। इस बारे में जो आशंकाएं जाहिर की गई हैं उन्हें दूर करना यहां अप्रासंगिक नहीं होगा। कहा जा रहा है कि भूमिहीन श्रमिकों की स्थिति और भी बदतर हो जाएगी, क्योंकि बटाईदारी पर लगे पूरे प्रतिबन्ध को देखते हुए कोई भी किसान अपने खेत मजदूर को मजदूरी के बदले जमीन का कोई टुकड़ा नहीं देगा, न ही खेती में किसी की भागीदारी कबूल करेगा। यह तर्क निराधार है। दोनों तरह के रोजगार देने की स्थिति में कोई फेरबदल नहीं किया गया है, बल्कि वही है जो पहले थी। सेवावधि भर के लिए जमीन किसी को देना और काम में साझीदार बनाना, इस विधेयक में जमीन को बटाई पर या किराये पर उठा देना नहीं माना गया है।

जहां तक भूमिहीनों के हित की दृष्टि से उठाए गए कदम की बात आती है, विधेयक में सारी परती जमीन ग्राम समुदाय को सौंप दी जाने की व्यवस्था होने से जमीन में उनकी निश्चित भागीदारी अब सम्भव हो गई है। फिर उन्हें अपने घरों का स्वामी घोषित किया गया है, जहां से बीते कल तक उन्हें बिलकुल मनमाने ढंग से बिना कोई मुआवजा दिए बेदखल किया जा सकता था।

सहयोग और अनिवार्यता

किसी बेहतर समाधान के अभाव में कुछ आलोचक अनिवार्य सहकारी खेती का सुझाव देते हैं जिसमें अलाभकर जोतों और भूमिहीनों को काम देने की समस्या से निबटा जा सके। जैसा कि हम देखेंगे, सहकारी खेती को विस्मृत नहीं किया गया है। लेकिन लोगों पर इसे बिलकुल थोपा नहीं जा सकता। क्या 'अनिवार्य सहकारी' खेती से अर्थ का खुलासा होता है? यह 'अनिवार्य सामूहिक' खेती तो हो सकती है, लेकिन कोई भी किसी तरह से इसे 'सहकारी खेती' नहीं कह सकता। फिर, अनिवार्य सामूहिकीकरण यदि सम्भव भी हो तो क्या इससे समस्या का समाधान हो जाता है? पहली बात यह कि अनिवार्यता को अमल में लाने पर किसान अपना अपेक्षित उत्साह खो बैठेंगे और उत्पादन घट जाएगा। सामूहिक खेती के क्रम में श्रम साधनों को एकत्र करने से आज के स्वतः प्रेरित किसान कल के श्रमिक हो जायेंगे, जिस स्थिति का वे अन्त तक विरोध करेंगे। दूसरे, छोटी जोतें क्यों खत्म होनी चाहिए, इसका मूल कारण यह बताया जाता है कि वर्तमान जोतदारों को वे पूरा काम नहीं दे पातीं। लेकिन क्या बड़ी इकाइयों में उनके

विलय से ज्यादा काम की स्थिति पैदा होती है—सिर्फ मौजूदा दखलकारों के लिए ही नहीं, बल्कि 25 प्रतिशत अतिरिक्त हाथों के लिए भी ? नहीं, बिलकुल नहीं होती। इसके अलावा, सहकारी या सामूहिक खेती से भूमिहीनों को रोजगार उपलब्ध होने के बदले बेरोजगारी ज्यादा मिलेगी क्योंकि मवेशियों का संयुक्त स्वामित्व अव्यवहार्य होगा और मशीनों का उपयोग ज्यादा होगा जो श्रमिकों की जगह ले लेंगी।

तो, सवाल उठता है कि फिर और उपाय क्या है ? वह है—सहकारी रूप से आयोजित हस्तशिल्प उद्योगों या लघु कुटीर उद्योगों तथा इनके साथ-साथ निर्माणाधीन जल-विद्युत परियोजनाओं से प्राप्त बिजली से चलने वाले लघु यांत्रिक उद्योगों के देशव्यापी नेटवर्क की स्थापना। इस तरह के विकेन्द्रीकृत उद्योग तन्त्र से ही बहुसंख्यक लोगों को रोजगार मिल सकता है। ऐसे लोग राजधानी की अपेक्षा ग्रामीण भारत में ज्यादा आसानी से उपलब्ध हैं, जिनके पास या तो काम बिलकुल है ही नहीं या बहुत कम है। बड़े उद्योगों की अपेक्षा ये छोटे उद्योग, प्रत्येक इकाई पर लगाई गई पूंजी के हिसाब से, ज्यादा रोजगार मुहैया करते हैं। वह दौर काफी पहले गुजर चुका है, जब बड़े पैमाने पर होने वाले उत्पादन की लागत घटने से मांग बढ़ जाती थी, उत्पादन में वृद्धि होती थी, फलस्वरूप विस्तार होता था और इसीलिए रोजगार में वृद्धि होती थी। अब तो उस विकसित टेक्नॉलॉजी को धन्यवाद कि अतिरिकत उत्पादन के लिए हमें अपेक्षाकृत कम लोगों की जरूरत पड़ती है, जिसका परिणाम है कि आज का उद्योग निर्माण उतने प्रतिशत को रोजगार नहीं दे पाता जितने को वह पहले देता था।

जन-शक्ति

मान लें अगर हमारी सारी जनशक्ति के लिए रोजगार जुटाने लायक जमीन होती भी, तो एक बड़ा महत्त्वपूर्ण कारण बना ही रहता कि क्यों हमारे देशवासियों को आज कृषि की अपेक्षा औद्योगिक रोजगार को प्राथमिकता देनी चाहिए, क्योंकि देश को समृद्ध बनाने का यही एक रास्ता है। एक सही समाज में श्रमिक को उसकी संख्या और क्षमता के अनुसार पुरस्कृत किया जाना चाहिए, अर्थात् ऊर्जाखपत की मात्रा और अपेक्षित क्षमता के आधार पर उसका पारिश्रमिक होना चाहिए। इस दृष्टि से कहें तो हल चलाने वाले श्रमिक के एक घंटे का लगभग वही पारिश्रमिक होना चाहिए जो एक सामान्य कारखाने की मशीन चलाने वाले का होता है। लेकिन, हकीकत यह है कि 22 देशों से एकत्र किए गए आंकड़ों के आधार पर एक अर्थ-शास्त्री ने यह निष्कर्ष निकाला कि 'कृषि सम्बन्धी गतिविधियों की अपेक्षा मनुष्य की अन्य तमाम गतिविधियों की उत्पादकता औसतन 4.35 गुना अधिक होती है। मैं यहां इस विषमता के कारणों की तह में जाना आवश्यक नहीं समझता,

लेकिन यही वह कारण है, क्योंकि हर जगह कृषक वर्ग निर्धन हैं और हमेशा रहा है। औद्योगिक, व्यापारिक और समाज के अन्य तबकों की अपेक्षा निर्धनतर। यही कारण है कि सभी देशो में—यहां तक कि अत्यन्त कृषि प्रधान देशों में भी—ग्रामीण आबादी घटती जा रही है और जैसे-जैसे समय गुजरता है, वह पूरी आबादी में अनुपाततः न्यून से न्यूनतर होती जाती है। फिर भी हमारे देश की कहानी सबसे अलग है। यहां की आबादी में सीधे कृषि पर निर्भर लोगौं का अनुपात सन् 1891 के 61 प्रतिशत से बढ़कर 1921 में 73 प्रतिशत हो गया, तथा उद्योग पर निर्भर लोगों का अनुपात 1880 के 12.3 प्रतिशत से घटकर 1931 में 9.7 प्रतिशत रह गया।

विकेन्द्रीकरण

इसलिए, यह न तो देश के हित में होगा, न ही भूमिहीन लोगों के हित में कि उन्हें कृषि-व्यवस्था में बांध दिया जाए। आज स्तरीयता और जल विद्यु त की उपलब्धि ने यह सम्भव बना दिया है कि विगत शताब्दी की भांति आबादी को बड़े शहरों की ओरहांके बिना या उन्हें उनके गांव-घर से हटाए बिना कोई देश औद्योगिक राष्ट्र बन सके। अतः हमें अपनी ऊर्जाओं को विकेन्द्रीकृत उद्योग की ओर मोड़ना है, जो कि बेरोजगारी के लिए एक मात्र रामबाण है। उद्योग और कृषि के बीच सही संतुलन रखने के लिए हमें सचमुच ही अपनी कृषि पर आश्रित आबादी से अच्छे खासे प्रतिशत को उद्योगों को तरफ ले जाना होगा जो कि आज अर्द्ध-बेरोजगारी की स्थिति में है।

इस सम्बन्ध में एक और मुद्दे को सामने रखना विषयान्तर नहीं होगा: समाजवादी आलोचक ग्रामीण समाज के विकास के क्रम में दो अलग-अलग शिविरों और निकट भविष्य में दोनों के बीच निश्चित संघर्ष की बात करते हैं—एक तरफ शोषक भूमिधर और दूसरी तरफ शोषित भूमिहीन श्रमिक। उत्तर प्रदेश में 1931 की जनगणना के अनुसार काश्तकारों की संख्या जहां 13,807,157 थी, वहीं खेत मजदूरों की संख्या थी 34,19,185। अर्थात् दोनों के बीच 100 : 25 का अनुपात था, वहां मजदूरी के लिए गुलामी और सर्वहारा का सवाल नहीं उठता। अतएव ऐसे समाज में, जहां रोजगार के लिए उपलब्ध लोगों से कहीं ज्यादा संख्या में रोजगार देने की क्षमता रखने वाले लोग हों, वर्ग-संघर्ष का सवाल ही नहीं उठता।

उत्पादन

अब दूसरी आपत्ति को लें। ऐसे लोगों का अभाव नहीं जिन्हें शिकायत रही है कि यह उन्मूलन योजना गरीबी से छुटकारा दिलाने या उत्पादन की वृद्धि में

सहायक नहीं होगी। इस सम्बन्ध में अगर कुछ कहना है तो इतना ही कि ज्यादा उत्पादन के लिए यह योजना जितने प्रोत्साहन जुटाती है, उतना सम्भवत: और कोई योजना नहीं जुटा सकती। किसान भूस्वामी एक काश्तकार या मजदूर की अपेक्षा कहीं अधिक कड़ी मेहनत करने और ज्यादा देर तक काम करने के लिए मशहूर हैं। जिन्हें इस कथन की सत्यता में सन्देह हो वे मेरठ और मुजफ्फरनगर के गांवों में जाकर देखें और अवध के गांवों से उनकी तुलना करें। दोनों जगहों की स्थितियों में जमीन आसमान का अन्तर है, जिसके कारण की जड़ें दोनों जगहों की काश्तकारी की स्थितियों में निहित हैं। एक जगह खेत का स्वामित्व उन्हीं हाथों में है जिनका उस पर कब्जा है, दूसरी जगह वैसी बात नहीं है।

दूसरे, ऐसा दावा कतई नहीं किया गया है कि जमींदारी तो हम खत्म करें, लेकिन उत्पादन बढ़ाने के लिए कुछ और करने की आवश्यकता नहीं। उत्पादन का चमत्कारिक कारक तत्त्व है स्वामित्व, जिसके तुरन्त बाद है—पानी, खाद, अच्छे बीज, शिक्षा और बाजार तक पहुंचाने वाली विपणन प्रणाली। ये सभी सुविधाएं जुटाने का काम पूरा करने के लिए उत्तर प्रदेश सरकार ने गम्भीरता के साथ कार्यक्रम बनाये हैं, लेकिन उनकी विस्तार से चर्चा यहां अनावश्यक है।

सुझाव का खण्डन

उत्तर प्रदेश के जमींदारों के एक नेता ने विधान सभा में बड़े भोलेपन से सुझाव पेश किया कि इतने बड़े विधेयक के विरोध को देखते हुए सरकार बखूबी ऐसा एक छोटा विधेयक ला सकती है कि काश्तकार अपने लगान का दस गुना जमींदार को चुका कर उसी से सीधे भूमि के स्वामित्व का अधिकार प्राप्त कर लें तथा यह कि जमींदार उसका स्वागत करेंगे।

यहां एक उल्लेख करना शायद अनुचित न होगा कि चरण सिंह ने 1939 में एक 'भूमि उपयोग विधेयक' तैयार किया था—ठीक उसी सुझाव के अनुरूप, लेकिन निम्न कारणों से उन्होंने उसे मंत्रिमंडल के विचारार्थ नहीं रखा। पहला यह कि अगर उनके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया जाता तो ग्राम समुदाय को कोई भूमि नहीं मिल पाती, छोटे जमींदार मौजूदा योजना की अपेक्षा काफी कम प्राप्त कर पाते, धर्मार्थ और दातव्य संस्थाएं अपनी वर्तमान आय से वंचित हो जातीं जिसकी कि मौजूदा विधेयक में गारण्टी दी गई है। राज्य का भूमि पर से बुनियादी हक छिन जाता जिसे अब राज्य को सौंप दिया गया है तथा जमींदार उन रैयतों के मालिक बने ही रहते जो रुपये की व्यवस्था कर पाने में असमर्थ हैं।

मुख्यत: यही आपत्तियां हैं जो अभी तक उठाई जाती रही हैं। विधेयक के ढांचे से पाठक को पता चल जाएगा कि प्रदेश की सरकार किन्हीं नारों के चक्कर में नहीं आई और न ही उसे साधनों के बारे में गलतफहमी रही है। अपने देश की

परिस्थितियों का ध्यान रखते हुए कि चूंकि यहां आबादी के लिहाज से भूमि कम है और जिस तरह की सभ्यता के विकास की हम उम्मीद रखते हैं, हमने अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप बेहतर कदम उठाने के क्रम में इस भय को पास तक नहीं फटकने दिया कि इस पर समाजवादी या साम्यवादी स्वीकृति की मुहर लगे ही। अत्याचारी जमींदार, जिन्होंने अन्तहीन अत्याचार किए तथा दमन की शिकार रैयत, जो लम्बे समय से यातना भोगती रही—दोनों ही खत्म होने को हैं, उनके स्थान पर किसान का उदय होगा, जो तत्काल भूमि का स्वामी और जीविका-अर्जक बन जाएगा। मिले-जुले हितों वाली यह स्थिति मार्क्सवादी सिद्धान्तों के लिए एक चुनौती पेश करती है। हमारी अवधारणा का भूमिधर लोकतंत्र के लिए एक ठोस आधार प्रस्तुत करेगा तथा किसी भी दिशा में उठने वाली सारी बिगड़ैल और उपद्रवी हवाओं के लिए अडिग चट्टान साबित होगा।

उत्तर प्रदेश के मैदानों की पुरानी भूव्यवस्था प्रणाली को, जिसके अन्तर्गत राज्य के कुल जोत-क्षेत्र का 96.8 प्रतिशत यानी 4,54,42,000 एकड़ भूमि है, जड़-मूल से उखाड़ दिया गया है। इस प्रकार एक आदमी को दूसरे आदमी से बांधे रखने वाले सारे सामन्ती बंधन तोड़े जा चुके हैं। एक झटके में शोषण को समाप्त कर दिया गया है तथा गांव के किसी भी आदमी को अपनी भूमि, घर-बार, कुएं या पेड़ों के लिए किसी और का मुहताज नहीं रहने दिया गया है। उत्तर प्रदेश के विस्तृत ग्रामांचल में कहीं भी अब कोई जमींदार या रैयत या लम्बरदार नहीं रहा।

राज्य और वास्तविक जोतदारों के बीच उत्तर प्रदेश में जो भी बिचौलिये थे, उन्हें खत्म कर दिया गया है, जैसा कि निम्नांकित तालिका से स्पष्ट हो जाएगा। उत्तर प्रदेश में निजी स्वामित्व वाले क्षेत्र में से पट्टे पर दिए गए क्षेत्र का प्रतिशत लगभग नगण्य है। इस तालिका में भारत सरकार द्वारा जोतों की गणना के क्रम में वर्ष 1953-54 में देश भर से एकत्र किए गए आंकड़े शामिल हैं :

तालिका 2.1

क्रमांक	राज्य	निजी स्वामित्व वाले क्षेत्र से पट्टे पर दिए गए क्षेत्र का प्रतिशत
1.	आन्ध्र प्रदेश	8.6
2.	तेलंगाना	13.6
3.	गुजरात	8.3
4.	केरल	10.0

5.	मध्य प्रदेश (1)	6.7
6.	मद्रास	9.7
7.	महाराष्ट्र	17.9
8.	मैसूर*	20.5
9.	पंजाब	27.0
10.	उत्तर प्रदेश (3)	1.1
11.	राजस्थान (2)	17.4

(1) विन्ध्य प्रदेश को छोड़कर।

(2) आंकड़े 22 चुनी हुयी तहसीलों के हैं।

(3) आंकड़े 204 गांव के हैं जिन्हें नमूने के तौर पर लिया गया।

स्वाधीनता प्राप्ति से वर्षों पहले से प्रमुख नेतागण इस बात पर बल देते रहे कि भारत पर अंग्रेजी हुकूमत के दौरान जमींदारी प्रथा के जड़ जमाने के साथ ही ग्रामीण ह्रास का दौर आया। भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन से जुड़े लगभग सभी प्रमुख नेताओं का यह विचार रहा कि जमींदार प्रतिगामी तत्त्व थे जो भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास में बाधा उपस्थित कर रहे थे। इसीलिए ग्रामीण प्रगति के लिए पहले और आवश्यक कदम के रूप में जमींदारी प्रथा के उन्मूलन की वकालत की गई। भूमि पर किसान के बुनियादी हक का और राजनीतिक आर्थिक आजादी पर जोर दिया जाना एक ऐसा तत्त्व साबित हुआ जिसके चलते स्वाधीनता आन्दोलन को व्यापक जनसमर्थन मिला। अतः आजादी मिलते ही उत्तर प्रदेश विधान सभा में जमींदारी उन्मूलन विधेयक का पेश किया जाना एक लम्बे समय से सुविचारित कार्य-योजना की ही स्वाभाविक परिणति थी।

इसीलिए, मोटे तौर पर, भूमि सुधार कानून के लक्ष्य का सम्बन्ध सामुदायिक जीवन के सभी महत्त्वपूर्ण चरणों से है। एक कृषि प्रधान देश में, जहां खास तौर से खेती महज भौतिक लाभ के लिए अपनाया जाने वाला कोई व्यवसाय न होकर एक वांछित जीवन पद्धति है, भूमि सुधार के लिए उठाए गए कदम और उनके प्रभावों का महत्त्व राजनीतिक और सामाजिक होने के साथ-साथ आर्थिक भी है।

भूमि सुधार के राजनीतिक पहलू पर बहुत सोचा-विचारा गया, क्योंकि विधेयक के मसौदाकारों को ग्रामीण क्षेत्र में राजनीतिक स्थिरता सुनिश्चित करने की आवश्यकता का भी ध्यान था। लेकिन कमजोर क्षेत्र में यानी सामाजिक मीनार के निचले तले में निजी सम्पत्ति के सिद्धान्त को बल प्रदान किए जाने से इन सुधारों ने वर्ग-संघर्ष की वैचारिकता वाले विशाल विरोधी वर्ग की सृष्टि कर डाली।

* दस एकड़ से अधिक वाली जोतों के मामले में।

स्वतंत्र भू-स्वामी किसानों की संख्या में कई गुना वृद्धि होने से एक बीच का तबका, सुस्थिर ग्रामीण समाज तथा राजनीतिक चरमवाद का विरोधी बनकर सामने आ गया है। अन्त में यही कहना उपयुक्त होगा कि कृषि सुधार ने शान्ति में खलल डालने वालों तथा सुव्यवस्थित प्रगति के विरोधियों की राजनैतिक पाल नौकाओं को बेकार कर दिया है। इसके सामाजिक पक्ष को देखें तो चालीस प्रकार की काश्तकारी को तीन में सीमित कर दिया गया है—भूमिधारी, सीरदारी और आसामी। सुधारों ने ग्रामीण वर्गों के परम्परागत विभेद को दूर किया है और वर्गों का खात्मा करने के बजाए उन्हें कम किया है। इस तथ्य की सराहना के लिए अधिक कल्पनाशील होने की जरूरत नहीं कि जमींदारों ने जहां अपनी अमीरी खोई, वहीं उनका प्रभाव भी काफी घटा।

इस कदम का आर्थिक महत्त्व इस बात में है कि जहां अपनी जमींदारी की आय के फूलते-फलने वाले ढेर सारे जमींदारों की आर्थिक भूमिका समाप्त हो गई, वहीं किसानों को वैसा बहुत कुछ मिला जिसकी उन्हें बड़ी जरूरत थी—भूमि का एक टुकड़ा जिसे वे अपना कह सकें। सूझता नहीं कि इस तथ्य का, भूमि को सुधारने के लिए अभी-अभी उपलब्ध प्रोत्साहन का आर्थिक मूल्यांकन किन शब्दों में किया जाए, लेकिन अगर सुप्रसिद्ध अंग्रेज कृषि विशेषज्ञ आर्थर युंग का यह कथन सही था कि "सम्पत्ति (भू-स्वामित्व) का जादू रेत को सोने में बदल डालता है", तो उत्तर प्रदेश के ये नए भूस्वामी अपना आर्थिक दर्जा बढ़ाने के सही मार्ग पर हैं, हालांकि छोटी-छोटी जोतों के कारण अवश्य ही उनकी अपनी सीमाएं हैं।

3

भूमि के रिकार्ड और पटवारी

उत्तर प्रदेश के मैदानी भागों में, रामपुर और बनारस की पुरानी रियासतों तथा राज्य के शहरी क्षेत्रों को छोड़कर, एक जुलाई 1952 को जमींदारी उन्मूलन और भूमि-सुधार कानून लागू होने के फलस्वरूप या कहिए कि उसके तुरन्त बाद ही जिला मुख्यालयों के राजस्व कार्यालयों तथा लखनऊ के राजस्व सचिवालय में भी शिकायतों के अम्बार लगने लगे कि अधिवासी क्षेत्रों में आने वाले लोगों की एक बड़ी संख्या को राजस्व के खातों में दर्ज नहीं किया गया है, या अगर दर्ज किया भी गया है तो उन्हें जोर-जबरदस्ती या धोखाधड़ी के सहारे बेदखल कर दिया गया है, या किया जा रहा है।

इस स्थिति से निबटने के लिए दो कदम तत्काल उठाए गए। जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून की धारा-342 के तहत एक आदेश जारी करके बेदखल आसामी या अधिवासी के लिए जमीन की वापसी का दावा दायर करने की निश्चित अवधि को छह महीने से बढ़ाकर एक साल कर दिया गया। दूसरे, सात नवम्बर 1952 को उत्तर प्रदेश भूमि सुधार (पूरक) नामक कानून को संविधि पुस्तिका में शामिल किया गया, जिसने सब-डिवीजनल अधिकारी या सरकार द्वारा अधिकृत तहसीलदार तक को यह अधिकार दे दिया कि वह मौका-मुआइना कर लेने के बाद किसी व्यक्ति का नाम राजस्व खाते में दर्ज कर ले। इन दो कानूनी उपायों से न केवल आगे की बेदखलियों पर रोक लगी, बल्कि लाखों गरीब और बेसहारा लोगों को बिना किसी दिक्कत के अपनी-अपनी जमीनों पर कब्जा मिला।

बावजूद इसके कमजोरों को बेदखल किए जाने की शिकायतें जारी रहीं। इस मामले में पटवारी ही था, जो आफत की जड़ था। उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन समिति ने 1948 में पटवारी की भूमिका के बारे में जो कुछ लक्ष्य किया, वह इस प्रकार है :

ग्रामीण खातों में उसके द्वारा अनजाने या जानबूझ कर की गई गलतियां किसानों के भाग्य को प्रभावित करती थीं; इसलिए बेईमान पटवारी के लिए लूट-खसोट के काफी अवसर थे। उनमें से बहुतों ने अवसर का पूरा फायदा उठाया; दीवानी अदालतों में मुकदमे लड़ने पर होने वाले कमर तोड़ खर्च को देखते हुए बहुत से किसान राजस्व खातों की गलत प्रविष्टियों के खिलाफ खड़े नहीं हो पाये होंगे। (देखें रिपोर्ट, पृष्ठ 177)

इसलिए, पटवारी की ताकतों में कटौती करने की जरूरत थी। जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून के चलते राजस्व कानून में जो परिवर्तन आया, उसने लैण्ड रिकार्ड्स मैनुअल में कठोर संशोधन के लिए प्रेरित किया। इस प्रकार मैनुअल के संशोधन का काम हाथ में लिया गया तथा वर्ष 1952 के अंतिम चरण में उसे अंतिम रूप दिया गया।

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि कुछ तहसीलों को फिर से गठित किया गया था तथा कई जिलों के उन बाहरी इलाकों को, जो पिछली एक सदी से अस्तित्व में थे और प्रशासन में भ्रम पैदा करते थे, खत्म कर दिया गया था।

पुरानी व्यवस्था में पटवारी को यह इजाजत होती कि वह भोगाधिकार वाले रेहनों, बंटवारों (जिनमें पटवारी का निर्णय विवाद से परे होता), नियत काश्तकारों या शिकमी काश्तकारों की ओर से खेती कर रहे व्यक्तियों के नामों, जोतदारों द्वारा परती भूमि को किराये पर उठाने के विवरणों, लगान में परिवर्तनों तथा कछारी बदलाव या बाढ़ग्रस्तता के फलस्वरूप बिना स्वामित्व वाली भूमि पर कब्जे की स्थिति में अपेक्षित संशोधनों को बाकायदा दर्ज करे।

कुछ मामलों में पटवारी से यह अपेक्षा भी की जाती कि वह खसरा और खतौनी में दर्ज किए गए परिवर्तनों के बारे में काश्तकारों और जोतदारों के बयानों के रिकार्ड रखा करे। इस तरह वह यह फैसला कर सकता था कि कोई व्यक्ति भूमि का असली स्वामी है या घुसपैठिया, सुपुर्दगी वैध है या नहीं, या परित्यक्तता वाली स्थिति आई थी या नहीं; और भी इसी तरह की अन्य बातें। संक्षेप में, पटवारी के पास किसानों के दर्जे और अधिकारों पर निर्णय देने के काफी ज्यादा अधिकार थे, जिनका अगर दुरुपयोग होने लगता तो राजस्व, दीवानी और फौजदारी अदालतों में लम्बी और खर्चीली मुकदमेबाजी शुरू हो जाती।

भूमि के रिकार्ड रखने की नई व्यवस्था में ऊपर वर्णित सारे अधिकार वापस ले लिए गए। लेखपाल (जिसने पटवारी की जगह ली) का सीधा दायित्व सिर्फ यह रह गया कि वह जगह पर जाकर कब्जे के बारे में तथ्यों का पता लगाए और कब्जा सम्बंधी जो भी परिवर्तन उसे देखने को मिलें, उनकी रिपोर्ट आवश्यक जांच के लिए अपने अधिकारियों को दे दे। खास तौर से, खतौनी या खसरा में काश्तकारों-जोतदारों के नाम में कोई हेर-फेर करने की उसे मनाही हो गई। अगर

अपनी पड़ताल के दौरान वह पाता कि काश्तकार-जोतदार वाले कॉलम में दर्ज व्यक्ति से भिन्न किसी व्यक्ति का खेत पर असली कब्जा है तो सिर्फ खसरा के 'टिप्पणी' वाले कॉलम में वह उसका नाम दर्ज कर सकता था, लेकिन कब्जे का स्वरूप नहीं।

अतः पटवारियों ने, जो संख्या में 27,000 थे और राजस्व प्रशासन में बहुत ही महत्त्वपूर्ण सम्पर्क सूत्र का काम करते थे, फरवरी 1953 में राज्यव्यापी हड़ताल शुरू कर दी। उनकी पहली मांग यह थी कि नये लैण्ड रिकार्ड मैनुअल को वापस ले लिया जाए क्योंकि उसने उन्हें ज्यादातर अधिकारों से वंचित कर दिया था। दूसरी मांग थी कि उनके वेतनमान की मौजूदा दर मासिक 25 रुपये और महंगाई भत्ता 12 रुपये अतिरिक्त को बढ़ाकर क्रमशः 50 रुपये और 25 रुपये अतिरिक्त किया जाए। अंतिम मांग थी कि उन्हें पेंशन के अधिकार के साथ सरकारी कर्मचारियों का स्थायी दर्जा मिलना चाहिए।

जैसी कि राजस्व मंत्री चरण सिंह ने (जो उनकी तीन मांगों में से अंतिम दो को जायज मानते थे) उन्हें सलाह दी थी, वे महीना भर या उससे कुछ ज्यादा समय तक इन्तजार नहीं कर पाये और सामूहिक रूप से त्यागपत्र दे बैठे, जो आगामी 4 मार्च से प्रभावी होने वाले थे। उन्हें विश्वास था कि उनके इस कदम से राजस्व प्रशासन ठप्प हो जाएगा और फलस्वरूप सरकार घुटने टेक देगी। मगर सरकार ने उनमें से 2700 को, जिन्होंने त्यागपत्र दिये ही नहीं थे तथा लगभग 2500 ऐसे पटवारियों को, जिन्होंने तुरन्त बाद ही अपने त्यागपत्र वापस ले लिए थे, को छोड़कर बाकी सबके त्यागपत्र स्वीकार कर लिए, सीधे 21,800 त्याग पत्र। इस सम्बन्ध में चरण सिंह ने 5 फरवरी 1953 को जो वक्तव्य जारी किया था, वह इस प्रकार है :

> "राज्य पटवारी संघ ने कुछ समय पहले कुछ मांगें पेश की थीं, जिन्हें स्वीकार करने में सरकार ने कई कारणों से असमर्थता अनुभव की। फिर भी मैंने उनके दो प्रतिनिधियों को, जो विगत 11 जनवरी को मुझसे मिले थे, कहा था कि अब जो नई व्यवस्था लागू होने को है, उसमें इस तरह की मांगों की स्वीकृति की किसी भी गुंजाइश पर सरकार सहानुभूति पूर्वक विचार करेगी तथा यह कि निकट भविष्य में वे किसी निर्णय की अपेक्षा रख सकते हैं। लेकिन बस्ती जिले में जैसे तरीके उन्होंने अपनाये या 9 जनवरी को संघ ने जो राज्यव्यापी आम हड़ताल आयोजित की, उनसे कोई लाभ नहीं।"
>
> इस बीच एक नई मांग जोर पकड़ने लगी थी कि नये लैण्ड रिकाड मैन्युअल को वापस ले लिया जाए, जो उन्हें उनके बहुत सारे अधिकारों से— जिनके व्यापक दुरुपयोग की हर वह आदमी पुष्टि करेगा जिसे हमारे देहाती इलाकों के बारे में कुछ भी जानकारी है, तथा जो स्थानान्तरण

आदेश के विरुद्ध दो याचिकाओं और एक संशोधन याचिका के विशेषाधिकार छीन लेते हैं—वंचित कर देते हैं। जैसा कि संघ के 26 जनवरी के प्रस्ताव से जाहिर है, यही वह मुख्य मांग थी जिसके फलस्वरूप सामूहिक त्यागपत्र की धमकी सामने आई।

पटवारीगण इस बात को भी समझ नहीं पाये कि पुरानी व्यवस्था के जो मूल्य और स्तर थे, उनके लिए वे अब बीते जमाने के हो चुके हैं तथा उत्तर प्रदेश में जिस सामाजिक और कृषि सम्बन्धी क्रांति की शुरुआत हुई है, वह उनसे एक नई आचार संहिता की मांग करती है। उनकी नजरें चूंकि ताकत और अब तक प्राप्त विशेषाधिकारों पर टिकी हैं, इसलिए सरकार पर अपनी शर्तें लादने की उम्मीद रखते हैं, इस विश्वास के साथ कि संख्या में 27,000 होने तथा भूमि के रिकार्डों के रख-रखाव के महत्त्वपूर्ण काम में लगे होने के कारण वे अपरिहार्य हैं। लेकिन सरकार के लिए धमकी के आगे झुक जाने का अर्थ होता अपने कार्यों से विमुख होना और सरकारी कर्मचारियों के किसी संगठन का ऐसे तरीके अख्तियार करना—जो तरीके इस देश में आमतौर पर सत्तारूढ़ सरकार के प्रति विपक्षी दल अपनाते हैं—अनुशासनहीनता का सघनतम रूप है। कोई सरकारी कर्मचारी अगर एक बार ऐसी मानसिकता का शिकार हो जाता है, तो फिर सक्षम सेवा का अंग होने योग्य नहीं रह जाता। अतएव, जिला अधिकारियों को यह आदेश जारी किया जाता है कि वे फौरन त्याग-पत्रों को स्वीकार कर लें। पटवारी जो उपयोगी काम कर रहे थे, उनकी सराहना में सरकार कभी शिथिल नहीं रही, लेकिन नये ढांचे के तहत नये सिरे से काम शुरू करने का जो यह अवसर आया है, उसका सही उपयोग करने में हिचकेगी नहीं।

त्यागपत्रों की सरकारी स्वीकृति का राज्यभर के किसानों ने तथा दूसरे लोगों ने भी व्यापक रूप से समर्थन किया। विधान सभा में 20 मार्च, 1953 को इस सवाल पर हुई बहस के दौरान इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की गई तथा सर्वसम्मति से इसे पारित किया गया।

फिर भी चरण सिंह को पटवारियों के बारे में अपनी नीति के कारण कांग्रेस पार्टी के शीर्षस्थ नेताओं के भारी विरोध का सामना करना पड़ा। प्रधानमंत्री नेहरू को इस बात के लिए राजी किया गया कि वे इस सवाल पर पुनर्विचार के लिए पंडित पंत को पत्र लिखें। नेहरू जी ने 17 अप्रैल 1953 के पत्र में उन्हें लिखा कि "जहां लोगों की एक बड़ी तादाद से निबटना हो, वहां ऐसी नीति का अपनाया जाना अविवेक सा प्रतीत होता है जो किसी भी तरह के समाधान पर रोक लगा दे" तथा "उन्हें नाउम्मीदी की तरफ धकेल देना अच्छी बात नहीं होगी और हमे भरसक

यह कोशिश करनी चाहिए कि बाद में कटुता और क्षोभ की कोई लकीर नहीं रह जाए।"

लेकिन चरण सिंह पीछे हटने को तैयार नहीं थे। उन्होंने अपने सहयोगियों और नेताओं से कहा कि सरकार अगर विचलित नहीं हुई तो अगले दस साल तक सरकारी कर्मचारी हड़ताल पर जाने या सरकार के नाम धमकियां जारी करने की बात सोचेंगे भी नहीं। उनकी भविष्यवाणी 10 नहीं बल्कि 13 साल के लिए सच साबित हुई, यानी 1966 तक, जब उत्तर प्रदेश के सारे मामलों पर श्रीमती सुचेता कृपलानी का दबदबा था और सचिवालय तथा विभागीय कार्यालयों के अराजपत्रित कर्मचारियों ने राज्य और जिला मुख्यालयों में हड़ताल शुरू कर दी थी; एक समय तो ऐसा आया कि नौ सप्ताह की अवधि के लिए प्रशासन ठप्प हो गया, वह भी आम चुनाव से ठीक पहले जो फरवरी के अन्त में होने वाला था। राजनीतिक कारणों से इस मामले में उनकी आवाज अकेली पड़ गई और उसे स्वीकृति नहीं मिली, जिसके फलस्वरूप देशभर के सरकारी कर्मचारियों को उत्तर प्रदेश से दिखा संकेत मिला और तभी से प्रशासन में अनुशासनहीनता अपवाद के बजाए देशव्यापी नियम सा बन गई है। पटवारियों को बर्खास्त कर दिया गया, पुरानी व्यवस्था को बदलने के लिए लेखपाल का पद सिरजा गया—जैसा कि पाठक जानते हैं, लेखपाल को पटवारी की अपेक्षा कुछ ही या कमतर अधिकार थे। लेखपालों की नियुक्ति, प्रशिक्षण और अपने-अपने केन्द्रों में काम पर लग जाने में लगभग नौ महीने लगे। जो 13,000 लेखपाल नियुक्त किये गए थे, उनमें से 18 प्रतिशत को राजस्व मंत्री के स्पष्ट निर्देश द्वारा अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित कर दिया गया था। दरअसल योग्य उम्मीदवारों की कमी के कारण सिर्फ पांच प्रतिशत की नियुक्तियां हो सकीं। पहले तो पटवारियों की श्रेणी में एक भी हरिजन नहीं था। राजस्व मंत्री ने भविष्य के लिए एक आदेश जारी किया कि 36 प्रतिशत रिक्त स्थान सावधिक रूप से हरिजनों को मिलेंगे, ताकि आगे के लिए रास्ता बने।

विक्षुब्ध पटवारियों को यह उम्मीद नहीं थी कि सरकार उनके इस्तीफे स्वीकार कर लेगी। भूतपूर्व पटवारियों के, जिन्होंने अपने त्यागपत्रों की स्वीकृति और फिर उनकी जगह पर लेखपालों की बहाली को चुनौती दी थी, अनुरोध पर इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा संविधान की धारा 225 के तहत 2 मार्च 1954 को लगभग 750 परवाने जारी किए गए। फिर भी इससे कुछ नहीं हुआ और ग्राम प्रशासन के पुनर्गठन का काम जारी रहा, जैसी कि योजना थी।

इस बीच विरोधी पार्टियों ने खास तौर से प्रजा सोशलिस्ट पार्टी ने, किसानों को सरकार के खिलाफ करते हुए अपनी कार्रवाई तेज की। इसके फलस्वरूप भूमि रिकार्डों में गलत प्रविष्टियों को लेकर शिकायतों का जबर्दस्त

तांता लग गया। सरकार ने अपनी तरफ से महसूस किया कि जिस बुनियाद पर जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार सम्बन्धी नीतियां लागू की जानी हैं, वह है काश्तकारी के मूल रिकार्ड की तैयारी, और चरण सिंह ने जुलाई 1954 में यह घोषणा की कि अगस्त के मध्य से भूमि सम्बन्धी रिकार्डों को ठीक करने का राज्यव्यापी अभियान शुरू किया जाएगा—एक असम्भव सा लगने वाला काम, क्योंकि कई क्षेत्रों में ये रिकार्ड 100 साल से भी पहले के थे।

भूमि रिकार्ड सुधारने का अभियान

द्वितीय महायुद्ध के आरम्भ, यानी 1939 से ही भूमि सम्बंधी रिकार्डों के रखरखाव में घोरतम उपेक्षा बरती गई। सारा जोर युद्ध पर था, इसलिए प्रशासकीय दिनचर्या के लिए वक्त कम था। स्वतंत्रता आई तो साथ ही अपनी समस्याएं भी लाई; खास तौरं से एक के बाद एक भूमि सुधार सम्बंधी कदम उठाये गये तो भूमि रिकार्ड संभालने वाले कर्मचारियों पर ध्यान अलग से देना पड़ा। पटवारियों के 1953 में सामूहिक त्यागपत्र दे देने पर एक और धक्का लगा। इसलिए भूमि रिकार्डों की बिगड़ती हालत की मांग थी कि तुरन्त ध्यान दिया जाए: इसके अनुसार खतौनियों* को, जो कि जमींदारी उन्मूलन के बाद के नये ढांचे में अब अधिकारों का मूल रिकार्ड हो चली थीं, ठीक करने का समायोजित अभियान राज्य के सभी जिलो में, कुमाऊं मंडल के पर्वतीय जिलों को छोड़कर, शुरू किया गया।

अगस्त 1954 में खरीफ की पड़ताल के साथ-साथ यह सुधार अभियान शुरू हुआ और नवम्बर 1954 तक जारी रहा। अभियान शुरू किया जाता उससे पहले छपे पर्चे गांवों में व्यापक रूप से बांटे गए, किसानों को आमंत्रित करते हुए कि वे रिकार्डों को नि:शुल्क ठीक कराने के इस अवसर से लाभ उठाएं तथा भूमि प्रबंधन समिति के अध्यक्ष और सदस्यों की मौजूदगी में, लेखपाल जब खतौनियों की प्रविष्टियां पढ़ें, तो उसे सुनने के लिए निश्चित तारीख को निर्धारित समय वहां जमा हो जाएं। इस प्रचार से लोगों में काफी दिलचस्पी जगी और प्रतिक्रिया बहुत ही संतोषजनक रही।

अभियान के उद्देश्य से प्रत्येक तहसील को तीन सेक्टरों में बांटा गया और प्रत्येक सेक्टर को एस. डी. ओ. (सब-डिवीजनल आफीसर), एक तहसीलदार और एक नायब तहसीलदार के जिम्मे किया। इन अधिकारियों में से प्रत्येक से यह अपेक्षा की गई कि वह अपने सेक्टर के प्रत्येक गांव में जाएगा।

भूमि प्रबंधन समिति की सलाह से गांव में चुने गए उपयुक्त स्थल पर जमा

---

* खाता बहियां, जिनमें जोतों के विवरण दर्ज होते हैं।

जोतदारों के सामने लेखपाल खतौनी के भाग-1 और भाग-2 को पढ़ता तथा उन सभी प्रविष्टियों का एक रिकार्ड बनाता, जिन जोतदारों द्वारा आपत्तियां उठाई गई थीं। पर्यवेक्षक-कानूनगो द्वारा इन सूचियों की पुष्टि हो जाने के बाद उन्हें अधिकारियों की क्रमिकता के अनुसार एस. डी. ओ., तहसीलदार या नायब तहसीलदार के पास भेजा जाता। त्रुटियों की सूचियां प्राप्त होते ही एस. डी. ओ., तहसीलदारों और नायब तहसीलदारों से अपेक्षा की जाती थी कि ये यथासम्भव वहीं संक्षेप में निर्णयात्मक आदेश जारी कर दें—दर्ज लगान या भू-राजस्व में परिवर्तन, काश्तकारी की क्षेणी, खेती की शर्त और जोतों के विभाजन से सम्बद्ध मामलों को छोड़कर, जिनका फैसला नियमित न्यायिक कार्यवाहियों के अन्तर्गत होना था।

मामूली अपवादों को छोड़ दें तो काम काफी अच्छे ढंग से हुआ। लेखपालों और पर्यवेक्षक कानूनगो के कामों पर नजर रखने के लिए एस. डी. ओ., तहसीलदारों और नायब तहसीलदारों ने व्यापक रूप से यात्राएं की। यह इसी एक तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि लगभग 34,86,000 गलत प्रविष्टियों को ढूंढ निकाला गया और ठीक किया गया।

सितम्बर 1954 में और 1955 के बजट अधिवेशन के दौरान कोई आधा दर्जन विधायकों ने सदन में खड़े होकर लेखपालों के विरुद्ध भ्रष्टाचार के गम्भीर आरोप लगाये। राजस्व मंत्री ने तत्काल विभागीय प्रमुख, यानी भूमि सुधार आयुक्त, को कलक्टरों से यह कहने का आदेश जारी किया कि जिन विधायकों को शिकायत थी, उन्हें अपने-अपने विधान सभाई क्षेत्र के पांच गांव किसी तरीके से या छिटपुट तरीके से चुनकर भूमि रिकार्ड से नमूने की प्रविष्टियां छांट लेने दें, जिनकी जांच उन विधायकों की उपस्थिति में तहसीलदार करेगा। भूमि सुधार आयुक्त को इस पर अपनी रिपोर्ट सरकार के पास यथासम्भव शीघ्र भेजनी थी। रिपोर्टों से पता चला कि आरोपों का तथ्य से कोई वास्ता नहीं था। चरण सिंह ने मुख्यमंत्री डॉ० सम्पूर्णानन्द को इस संबंध में तथा विभाग से प्राप्त रिपोर्टों के बारे में जो नोट भेजा था, वह इस प्रकार है।

मुख्यमंत्री

हमने 1952 के अंतिम चरण में लैण्ड रिकार्ड्स मैन्युअल को इस कदर संशोधित रूप दिया है कि व्यवहारतः पटवारी (अब लेखपाल कहेंगे) के ऐसे कोई अधिकार बचे नहीं रह गए कि वह ऐसी प्रविष्टियां बनाए जो किसानों को बुरी तरह प्रभावित करें। इसके साथ ही उसके विशेष अधिकार गए, भ्रष्टाचार के अवसर भी घटकर न्यूनतम रह गए हैं। यही प्रमुख कारण था

कि क्यों पटवारियों ने सामूहिक रूप से त्याग पत्र दिए।

लेखपालों का संख्या बल 27,000 से घटकर 18,000 रह गया, जिनमें से 13,000 नवनियुक्त हैं। कलक्टरों को बार-बार यह सुनिश्चित करने के लिए कहा गया है कि इन अधीनस्थ कर्मचारियों में भ्रष्टाचार फिर से प्रवेश नहीं कर पाए। मेरी बराबर यह धारणा रही है कि लेखपाल हालांकि अनुभव रहित हैं, लेकिन कुल मिलाकर अपने पूर्ववर्तियों की अपेक्षा कहीं अधिक ईमानदार हैं। फिर भी, मुझे हैरानी हुई जब पिछले सितम्बर में कांग्रेस पार्टी के दो विधायकों ने, एक सीतापुर से और दूसरे गोरखपुर से, सदन में आम लेखपालों के विरुद्ध अंधाधुंध आरोप लगाए। मैंने इन सदस्यों को पत्र लिखा कि लेखपालों के भ्रष्टाचार का उन्हें जो पता चला है, उसके तथ्यात्मक उदाहरण जुटाने की मेहरबानी वे मुझ पर करें। सीतापुर वाले सज्जन ने वैसा करने का वचन तो दिया, लेकिन किया कुछ नहीं। गोरखपुर वाले सज्जन ने तो मेरे पत्र की प्राप्ति सूचना तक देनी जरूरी नहीं समझी।

फिर, इसी तरह के आरोप बजट अधिवेशन के दौरान लगाए गए। बहस के बाद मैंने, जैसा कि मुख्यमंत्री को याद होगा, पार्टी की एक बैठक बुलाई थी; महज यह जानने के लिए कि राजस्व विभाग की गतिविधियों के प्रति—जिनसे हमारे गांव या हमारे 75 प्रतिशत महत्त्वपूर्ण लोग प्रभावित होते हैं—पार्टी की क्या प्रतिक्रियाएं हैं। लेखपालों में भ्रष्टाचार का सवाल भी उठा, हालांकि बहुत ही आकस्मिक तौर पर। पार्टी कुल मिलाकर सन्तुष्ट थी कि भ्रष्टाचार को खत्म करने के लिए सभी सम्भव कदम उठाए जा चुके हैं, तथा बहुत सिर खपाने पर भी नए सुझाव लेकर कोई सामने नहीं आया। फिर भी मैंने तीन प्रबल आलोचकों, एक बस्ती से और दो गोरखपुर से, के सामने प्रस्ताव रखा कि वे अपने विधान सभा क्षेत्र में जहां-तहां से पांच-पांच नाम चुन लें, जहां तहसीलदार की उपस्थिति में वे लेखपाल की प्रविष्टियों की जांच कर सकते हैं। बस्ती से प्राप्त रिपोर्ट इसी के साथ प्रेषित है। मैं मुख्यमंत्री से अनुरोध करूंगा कि कृपया इन कागजों पर दृष्टि दौड़ाएं। यह जोड़ना आवश्यक है कि यह रिपोर्ट सचमुच ही हमारे लिए बहुत ही संतुष्टिदायक होनी चाहिए।

हस्ताक्षर
चरण सिंह
25 मई, 1955

भूमि सुधार आयुक्त, उत्तर प्रदेश, लखनऊ को कलक्टर, बस्ती द्वारा भेजे गए डी० ओ० नं० 1411/11-9/54-55 एलआरओ, की प्रतिलिपि (दिनांक 17 मई 1955)।

कृपया काबिज प्रविष्टियों और विधायक श्री राजाराम शर्मा द्वारा उनकी पुष्टि किए जाने से सम्बन्धित डी० ओ० पत्र संख्या 655/एलआरसी/एसटी, दिनांक 6 अप्रैल 1955 देखें।

छिटपुट चयन निर्देश के अनुरूप विधायक श्री राजाराम शर्मा की उपस्थिति में निम्नांकित पांच गांव चुने गए थे। श्री शर्मा ने बाद में खास तौर से गांव महाला देखने की इच्छा जाहिर की और उनके अनुरोध को मान लिया गया तथा मंझारी, सोहरवालिया, बरदन, बेलडीहा और घुलमीजोत नामक गांवों की भी उनके द्वारा जांच की गई।

श्री शर्मा और तहसीलदार द्वारा बाकायदा हस्ताक्षरित पुष्टीकरण परिणाम की मूल प्रति संलग्न है—"यह सचमुच वास्तविक सन्तोष का विषय है कि जिन छह गांवों में इस तरह की छानबीन की गई उनमें से किसी एक में भी गलत प्रविष्टि नहीं पाई गई।"

डी०एल०आर०ओ० को खलीलाबाद के तहसीलदार की रिपोर्ट (दिनांक 11 मई 1955) की प्रतिलिपि।

श्री शर्मा को ऊपर लिखित गांवों में निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार ले जाया गया तथा उन्हें इन छह गांवों के खसरों के टिप्पणी वाले कालम में लेखपालों द्वारा दर्ज काबिज प्रविष्टियों के बारे में छानबीन करने की पूरी सुविधा और आजादी दी गई। श्री शर्मा की जांच विस्तृत थी तथा खेतों पर जा-जाकर उनकी पुष्टि की गई थी। विधायक महोदय इन छहों गांवों में एक भी भूल या गलत प्रविष्टि नहीं पा सके। इस तथ्य को पुष्टिकरण रिपोर्ट में स्वीकार किया गया है।

जहां तक गोरखपुर के विधायकों की शिकायत की बात है, श्री जे० निगम, आई०सी०एस०, भूमि सुधार आयुक्त, उत्तर प्रदेश, नैनीताल को श्री एन० पी० चटर्जी, कलक्टर, गोरखपुर द्वारा लिखा गया डी० ओ० नं० 144 (एफ-83) एच, दिनांक 23 मई, 1955 का पत्र कहता है :

कृपया अपना डी० ओ० नं० आर-656 एलआरसी/एसटी, दिनांक 18 मई, 1955 का पत्र देखें। काबिज प्रविष्टियों के पुष्टीकरण के लिए विधायक श्री द्वारका प्रसाद पाण्डेय और विधायक श्री सुखदेव प्रसाद के विधान सभाई क्षेत्रों में छिटपुट चयन पद्धति से निम्नांकित गांव चुने गए थे :

1. बिशनपुर भदेहर	1. चौका अहतामली
2. अहिरौली	2. घरभरिया
3. श्याम देवरवा	3. खैरांत
4. बैदा	4. अमराहा
5. सौनरेजी	5. माधोपुर
(तहसील महाराजगंज)	(तहसील फरेंदा)

2. विधायक श्री सुखदेव प्रसाद ने इन गांवों में जांच करने से इन्कार कर दिया। वे इन गांवों के चयन के लिए अपनाए गए तरीकों से सहमत नहीं थे। उनका राजस्व मंत्री से यह अनुरोध करने का प्रस्ताव है कि वे उनकी अपनी पसन्द के गांव चुनने की अनुमति दें।

3. श्री द्वारका प्रसाद पाण्डेय तीन गांवों की जांच पूरी कर चुके हैं, लेकिन चूंकि बहुत उत्साहजनक परिणाम उन्हें नहीं मिले, इसलिए पता नहीं कि कब वे शेष दो गांवों की जांच पूरी करेंगे।

पाठक यह जानने के लिए उत्सुक होंगे कि अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के कृषि विशेषज्ञ वुल्फ लेद्जिस्की ने विभिन्न राज्यों के भूमि रिकार्डों के सम्बन्ध में क्या कहा था।

"अनेक राज्यों में" उन्होंने कहा, "काश्तकारियां मौखिक आधार पर हैं, तथा कोई काश्तकार अपने काश्तकारी के अधिकारों की सुरक्षा के प्रति आश्वस्त नहीं हो सकता, अगर वे लिपिबद्ध न हों। लिखित रिकार्ड के बिना काश्तकारी की सुरक्षा के किसी या सभी प्रावधानों को लागू नहीं किया जा सकता। जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून लागू किए जाने के क्रम में राज्य सरकार द्वारा आयोजित विशेष अभियान के दौरान उत्तर प्रदेश में लाखों रिकार्ड सुधारे गए या नए सिरे से लिखे गए। यही बात देश के एक बड़े भाग के बारे में नहीं कही जा सकती, खास तौर से आन्ध्र प्रदेश, असम, बिहार, केरल, मद्रास, मैसूर और उड़ीसा के बारे में। स्पष्टत: काफी हद तक तत्कालीन राजस्व मंत्री चरण सिंह के संकल्पित नेतृत्व पर आधारित उत्तर प्रदेशीय पद्धति ऐसी नहीं थी कि अन्य अनेक राज्यों में अपना ली जाती।"* (अतिरिक्त बल)

* लुइस जे० वालिस्की (सम्पादक) : एग्रेरियन रिफार्म्स—एन अनफिनिश्ड बिजनेस, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1977, पृष्ठ 387।,

4

भूमि पुनर्ग्रहण की मांग से इंकार

जमींदारों ने सरकार से मांग की कि उन्हें असामियों से एक निर्धारित सीमा तक, जो कि पारिवारिक जोत-क्षेत्र की तिगुनी होनी चाहिए, भूमि के पुनर्ग्रहण की अनुमति दी जाए, "बिना यह विचार किए कि उनकी काश्तकारी किस प्रकार की है।" पुनर्ग्रहण सिर्फ व्यक्तिगत जुताई के आधार पर होना था और उसी क्षेत्र तक सीमित रहता, जिसे किसी परिवार के वयस्क कार्यकर्ता खेती के काम में ला पाते। बम्बई और पंजाब की राज्य सरकारों ने यह सीमा 50 एकड़ तय की थी और हैदराबाद में यह किसी जोत-क्षेत्र की पांच गुना थी। फिर भी जहां तक एक तरफ पुनर्ग्रहण के अधिकार और दूसरी तरफ काश्तकारी की सुरक्षा के बीच अन्तर्निमित विरोधाभास की बात है, पहली योजना (1951-56) में की गई उपर्युक्त सिफारिश में बड़े पैमाने पर काश्तकारों की बेदखली का खतरा निहित था। यह 'खतरा' कैसे वास्तविक तथ्य में बदल गया, वह बम्बई और हैदराबाद के पूर्ववर्ती राज्यों के उदाहरण से ही स्पष्ट हो जाता है, जिनके कृषि अधिनियम में मालिकों द्वारा भूमि के पुनर्ग्रहण का प्रावधान पहली योजना के बनने और अनुमोदित होने से पहले ही किया गया था।

गोखले इंस्टीट्यूट ऑफ पॉलिटिक्स एण्ड इकोनॉमिक्स ने बाम्बे टेनेन्सी एण्ड एग्रीकल्चरल लैंण्ड एक्ट-1948 के कार्य के बारे में एक रिपोर्ट तैयार की थी। उस कानून का उद्देश्य काश्तकारी को सुरक्षा प्रदान करना था, इस शर्त के साथ कि व्यक्तिगत खेती के लिए भूमि पर जमींदार के पुनर्ग्रहण का अधिकार बीच में नहीं आता हो। फिर भी रिपोर्ट के मुताबिक वह सुरक्षा व्यवहारतः कारगर नहीं हुई। पहले वर्ष, यानी 1948-49 की जांच के दौरान जो क्षेत्र काश्तकारों द्वारा काश्त होता था, उसमें से केवल 58.1 प्रतिशत पर ही जांच खत्म होने तक, यानी 1952-53 तक, उन्हीं काश्तकारों का दखल बना रहा। 38.7 प्रतिशत

का या तो मालिक ने पुनर्ग्रहण कर लिया था या काश्तकार बदल दिए गए थे। 80 प्रतिशत से ज्यादा मामलों में जमींदारों ने काश्तकारों की इच्छा से सुपुर्दगी प्राप्त कर ली थी।

हैदराबाद की सरकार द्वारा की गई एक जांच से यह संकेत मिला कि 1951-54 की अवधि में संरक्षित काश्तकारों की संख्या में 57 प्रतिशत कमी आ गई और उनके दखल वाला क्षेत्र मुख्यत: गैरकानूनी या तथाकथित 'इच्छित सुपुर्दगी' के चलते 59 प्रतिशत घट गया। हैदराबाद के पूर्व जागीरदार क्षेत्रों में जागीर उन्मूलन और भूमि सुधार के सामाजिक और आर्थिक प्रभावों की जो जांच आयोजित की गई थी, उसमें यह लक्ष्य किया गया :

> हैदराबाद टेनेन्सी एण्ड एग्रीकल्चरल लैण्ड्स एक्ट, 1950 जमींदारों के पुनर्ग्रहण के सीमित अधिकार के साथ रक्षित काश्तकारों की काश्तकारी को सुरक्षा प्रदान करता है। मूलत: 1951 में सिरजे गए रक्षित काश्तकारों में से सिर्फ 45 प्रतिशत अभी भी अपनी जोत के क्षेत्र के 54 प्रतिशत पर अपने रक्षित दर्जे का उपभोग कर रहे हैं, जबकि 12 प्रतिशत ने अपने खेत खरीद लिए हैं और भू-स्वामी जोतदार बन गए हैं। केवल 25 प्रतिशत को गैर-कानूनी तरीके से बेदखल किया गया है। जहां 22 प्रतिशत नाजायज ढंग से हथिया लिया गया है, वहीं 17 प्रतिशत ने स्वेच्छा से भूमि सौंप दी है।

पहली पंचवर्षीय योजना के दौरान असम, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, पेप्सू और कच्छ ऐसे राज्य थे, जहां जमींदारी के पुनर्ग्रहण की एक उच्चतर सीमा थी, लेकिन काश्तकारों को अधिकार नहीं था कि वे न्यूनतम कृषि भूमि अपने पास रख सकें।

देश के अन्य भागों में या तो काश्तकारों की सुरक्षा के लिए कोई कार्रवाई की ही नहीं गई या बेदखली सिर्फ अस्थायी तौर पर रोकी गई। अत: योजना आयोग ने द्वितीय पंचवर्षीय योजना में दो सुरक्षात्मक उपायों का प्रस्ताव किया, अर्थात् :

> (1) जहां भूस्वामी के पास निजी कृषि भूमि पारिवारिक जोत से अधिक लेकिन हदबंदी की सीमा से कम है, वहां उसे निजी खेत के लिए पुनर्ग्रहण का अधिकार हो सकता है, इस शर्त के साथ कि उसके काश्तकार के पास पारिवारिक जोत बची रहे तथा इस तरह प्राप्त भूमि को पहले से उपलब्ध जमीन के साथ मिला देने पर मालिक की निजी जोत का रकबा हदबंदी की सीमा को पार न करे; और
>
> (2) अगर भू-स्वामी की निजी कृषि भूमि पारिवारिक जोत से कम हो तो उसे काश्तकार की जोत के आधे हिस्से के, या उस क्षेत्र के, जिसे मिला देने से उसकी पारिवारिक जोत बनती है, इनमें से जो भी कम हो, उसके पुनर्ग्रहण

की अनुमति दी जा सकती है; इस शर्त के साथ कि काश्तकार के पास बुनियादी जोत से कम भूमि नहीं रह जाए।

चूंकि 'निजी कृषि', 'हदबंदी सीमा', 'पारिवारिक जोत' और 'बुनियादी जोत' को पारिभाषित करना सरल नहीं था, इसलिए इस सम्बन्ध में अलग-अलग राज्यों द्वारा जो कानूनी प्रावधान किए गए और जिस तरह उन्हें लागू किया गया उनमें विविधता थी। फलस्वरूप द्वितीय योजना में प्रस्तावित सुरक्षात्मक उपाय बहुत कम कारगर साबित हुए या कारगर हुए ही नहीं। उदाहरण के लिए भू-स्वामी असम में 33.3 एकड़ और पंजाब में 30 एकड़ भूमि का पुनर्ग्रहण कर सकते थे, शर्त यही थी कि काश्तकार के पास न्यूनतम क्षेत्र बचा रहे। आन्ध्र प्रदेश में जमींदार पूरे क्षेत्र का पुनर्ग्रहण कर सकते थे। बंगाल में किसी जमींदार के पास अगर 10 एकड़ या उससे कम भूमि होती, तो वह अपने काश्तकार से पूरे क्षेत्र का पुनर्ग्रहण कर सकता था, लेकिन अगर उसके पास 10 एकड़ से ज्यादा जमीन होती, तो वह 10 एकड़ या अपने स्वामित्व वाले क्षेत्र की दो तिहाई, जो भी अधिक हो (हर मामले में 25 एकड़ की शर्त के साथ) भूमि पुनर्गृहीत कर सकता था।

दूर शहरों में रहने वाले गैर मौजूद जमींदार भी अपने काश्तकारों से भूमि पुनर्गृहीत करने लगे तथा भाड़े के श्रमिकों द्वारा उस पर खेती शुरू कर दी या उसे बटाई पर लगा दिया। कुछ मामलों में जमींदारों ने भूमि बेच डाली या उसका बंटवारा करके खुद खेती करने लगे तथा इस प्रकार अपनी जोतों को वैध सीमा से कम करते हुए वे और भी क्षेत्रों के पुनर्ग्रहण के लिए काश्तकारों को बेदखल करने पर आमादा हुए। फिर, जमींदार के अधिकारों और काश्तकार के हितों के बीच बारीक सन्तुलन बनाए रखने की कोशिश में कानून को इतना जटिल बना दिया गया था कि यह गरीब काश्तकार की समझ से बाहर था। न ही उन काश्तकारों को बल पहुंचाने के लिए अपेक्षित चुस्त प्रशासकीय समर्थन आगे आ रहा था, जो अपने अधिकारों पर जोर देने के मामले में सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से आमतौर पर बहुत ही कमजोर स्थिति में थे।

भूमि सुधार पर योजना आयोग के पैनल ने कानून की खामियों और कानून के भीतर आने वाले काश्तकारों की स्थिति पर इनके दुष्प्रभाव का एक बढ़िया उदाहरण प्रस्तुत किया है। पैनल कहता है :

> कई राज्यों में हालांकि काश्तकारों को बेदखल करके जमींदार द्वारा पुनर्ग्रहीत की जा सकने वाली भूमि की मात्रा पर तो रोक लगाई गई, लेकिन अपुनर्ग्रहणीय क्षेत्र की तरह पुनर्ग्रहणीय क्षेत्र का कोई प्रावधान नहीं रखा गया। इस प्रकार जमींदार के पुनर्ग्रहण के अधिकार यद्यपि मात्रा में सीमित रहे, मगर वह सभी काश्तकारों पर अनुचित प्रभाव डालने में समर्थ था, साथ

ही उसके पास सौदेबाजी की ताकत थी और इस तरह कानून को उसने निष्प्रभावी बना दिया। वह भूमि के पुनर्ग्रहण का भय दिखाकर रुपये तक ऐंठ सकता था।

यद्यपि पूरे देश के आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं, लेकिन अकेले महाराष्ट्र की तरफ संकेत किया जा सकता है, जहां 1948 के प्रथम काश्तकारी सुधारों के बाद के दशक में भू-स्वामियों ने निजी खेत के लिए एक करोड़ सत्तर लाख एकड़ भूमि का पुनर्ग्रहण किया तथा प्रत्येक तीन 'रक्षित' काश्तकारों में से दो अपनी जमीनें गंवा बैठे। (रिपोर्ट ऑफ द कमेटी ऑन टेनेन्सी रिफॉर्म, प्लानिंग कमीशन, मार्च 1966)

भारत में भूमि सुधारों का अध्ययन करने वाले एक विदेशी विद्वान् के अनुसार इस मामले में कांग्रेस की नीतियां या उसकी सरकार की अक्षमता 'भारत के पिछले इतिहास में कभी न सुने गए स्वत्वहरण' के रूप में फलीभूत हुई।

आठवें दशक में भारतीय सेंसस ऑपरेशन के महानिबन्धक द्वारा मार्च 1971 में खेती में लगे भारतीय श्रमिकों की संख्या और प्रतिशत के बारे में कराए गए सर्वेक्षण से यही निष्कर्ष सामने आया था। आंकड़े इस प्रकार थे :

तालिका-4.1

कृषि एवं सम्बद्ध गतिविधियां	श्रमिकों की संख्या	कुल संख्या का प्रतिशत	श्रमिकों की संख्या	कुल संख्या का प्रतिशत
(I) कृषि (वास्तविक)	1.18.286	71.45	1,29,161	71.61
(क) जोतदार	84,601	51.10	78,177	43.34
(ख) कृषि श्रमिक	27,918	16.87	47,489	26.33
(ग) अन्य कृषि एवं सम्बद्ध गतिविधि	5,767	3.48	3,495	1.94
(II) वानिकी एवं लकड़ी कटाई	268	0.16	143	0.08
(III) मछली पकड़ना	544	0.33	586	0.32
कुल	1,19,098	71.94	1,29,890	72.01

स्रोत : द नेशनल एकाउण्ट्स स्टैटिस्टिक्स, 1970-71 से 1975-76, सी. एस. ओ., भारत सरकार, जनवरी 1978, पृ० 126

ऊपर दी गई तालिका दर्शाती है कि इन बेदखलियों अथवा तथाकथित

'रजामंदी से सुपुर्दगी' के फलस्वरूप 1961 में देश में कृषि क्षेत्र के श्रमिकों और जोतदारों की संख्या का, जो 16.87 : 51.10 यानी 3 : 9 का अनुपात था, वह दस वर्ष बाद यानी 1971 में बदलकर (26.33 : 43.34 या) 3:5 हो गया। जोतदारों की संख्या घटकर 15 प्रतिशत रह गई तथा भूमिहीन श्रमिकों की संख्या बढ़कर 56 प्रतिशत हो गई। इसका मतलब है कि लाखों किसान, खासतौर से नगण्य और छोटे-छोटे किसान, एक दशक की अल्प अवधि में ही अपनी जमीनों से बेदखल कर दिए गए थे—किसानों के सामने भूमिहीन श्रमिकों की श्रेणी में शामिल होने के अलावा कोई विकल्प नहीं था।

नगण्य और छोटे किसानों की बेदखली सत्तर वाले दशक में भी जारी रही, हालांकि धीमी रफ्तार से। अतएव किसी को चकित नहीं होना चाहिए यह देखकर कि 1981 में जोतदारों के मुकाबले कृषि श्रमिकों का अनुपात बदलकर 30 : 40 या 75:100 (1951 के 27:100 के स्थान पर) हो गया था।

दूसरी तरफ नेशनल सैम्पल सर्वे (1961-62) और ऑल इंडिया एग्रीकल्चरल सेंसस (1970-71) द्वारा पेश किए गए आंकड़े दिखाएंगे कि 1961-62 में जहां 39 प्रतिशत जोतें एक हेक्टेयर से कम क्षेत्र वाली थीं, वहीं 1970-71 में बढ़कर ये 51 प्रतिशत हो गईं तथा 10 हेक्टेयर से अधिक क्षेत्र वाले फार्मों की संख्या 1961-62 के (औसतन 17 हेक्टेयर रकबे वाले) 2 लाख से बढ़कर 1970-71 में 28 लाख हो गई। फिर, 1961-62 में बड़े फार्म जहां 386 लाख हेक्टेयर पर अथवा कुल क्षेत्र के 28.9 प्रतिशत पर फैले थे, वहीं 1970-71 में वे 500 हेक्टेयर पर यानी 30.8 प्रतिशत क्षेत्र पर छा गए थे। इस प्रकार बड़े किसान या जमींदार छोटे किसानों या अपने काश्तकारों को 114 लाख हेक्टेयर क्षेत्र से (=285 लाख एकड़=456 मानक बीघे एक दशक में, यानी साठ वाले दशक में) बेदखल करने में कामयाब हो गए थे। अगर 1947-81 और 1971-81 की अवधियों में हुई बेदखलियों के आंकड़े उपलब्ध हों, तो जमींदारों या काश्तकार-प्रमुखों द्वारा हथियाया गया क्षेत्र 456 लाख एकड़ से कहीं ज्यादा निकल जाएगा।

अस्तु, राजनीतिक स्वतंत्रता के उदय काल से ही जमींदार-रैय्यत प्रणाली के उन्मूलन तथा भूमि सुधार सम्बन्धी जो कदम देश में उठाए गए, वे हमारे ग्रामीण समाज के लिए वरदान की अपेक्षा अभिशाप ही सिद्ध हुए।

देश के राजस्व मंत्रियों में चरण सिंह शायद अकेले हुए, जिन्होंने योजना आयोग की सलाह मानने से सीधे इन्कार किया तथा जो भूमि के रिकार्डों में एक भी शिक्मी काश्तकार या अतिक्रमणकारी को दर्ज करने पर सहमत नहीं हुए, उत्तर प्रदेश में बेदखल किए जा रहे काश्तकारों की तो बात ही अलग रही। अप्रैल

1946 से अपने पांच वर्ष की अवधि में कांग्रेस मंत्रिमंडल द्वारा (जिसमें चरण सिंह संसदीय राजस्व सचिव थे) विधायी और प्रशासकीय कदम उठाए जाने के चलते उत्तर प्रदेश के प्रत्येक 100 कृषि श्रमिकों (परिवार के अवैतनिक सहायक समेत) में से कृषि श्रमिकों के परिवारों से सम्बद्ध श्रमिकों और जोतदार परिवारों से सम्बद्ध श्रमिकों का अनुपात 1931 के (18 : 22 या) 22 : 100 से घटकर 1951 में 11:100 रह गया, यानी ठीक आधे पर आ गया। फिर भी जहां तक 1951 के 'केवल कृषि श्रमिकों' का सवाल है, कृषि श्रमिकों और जोतदारों का अनुपात उस वर्ष 8.5 : 100 रहा। खेतों में कार्यरत 74.12 श्रमिकों में से 67.41 प्रतिशत जोतदार थे और केवल 6.71 प्रतिशत श्रमिक थे।

उत्तर प्रदेश में इस संतोषजनक स्थिति के कारणों में पहला तथ्य यह था कि राज्य में जमींदारी उन्मूलन की स्वीकृति के बारे में उत्तर प्रदेश विधान सभा द्वारा प्रस्तावित स्वीकृत किए जाने के तुरन्त बाद ही सरकार ने, 1 सितम्बर, 1957 को आदेश जारी कर सभी काश्तकारों और शिक्मी काश्तकारों की उनके कब्जे की जमीन से बेदखली पर रोक लगा दी। यू० पी० टेनेन्सी एक्ट, 1939 में आवश्यक संशोधन करके कार्यपालिका के इन आदेशों को कानूनी मान्यता दे दी गई। इसके साथ ही जो संशोधन कानून 1947 का एक्ट ×, 4 मई, 1947 को लागू हुआ था, उसने भी काश्तकारों और शिकमी काश्तकारों की उन जमीनों पर बहाली का प्रावधान कर दिया, जिनसे जनवरी 1940 के बाद उन्हें बेदखल किया गया था। दूसरे, राज्य के किसी भी कोने से किसी व्यक्ति को परेशान या बेदखल किए जाने की खबर मिलते ही विभाग की पूरी मशीनरी तत्काल सक्रिय हो उठती या उसे गतिशील कर दिया जाता।

लेकिन उत्तर प्रदेश में निम्नतम सीढ़ी पर स्थित गरीब किसानों का दुर्भाग्य रहा कि 1951 में कृषि श्रमिकों और जोतदारों के बीच जो 8 : 100 का अनुपात था, वह बढ़कर 1961 में 16 : 100 और 1971 में 35 : 100 हो गया। जनगणना रिपोर्ट की तालिका 4.2 से यह स्पष्ट हो जाता है :

तालिका-4.2

राज्य	वर्ष	
	1969	1979
1. आन्ध्र प्रदेश	0.76	1.18
2. असम	0.07	0.18
3. बिहार	0.41	0.90
4. गुजरात	0.30	0.52

5. हरियाणा	0.13	0.33
6. कर्नाटक	0.28	0.67
7. केरल	0.90	1.72
8. मध्य प्रदेश	0.29	0.50
9. महाराष्ट्र	0.51	0.83
10. उड़ीसा	0.24	0.58
11. पंजाब	0.24	0.47
12. राजस्थान	0.07	0.14
13. तमिलनाडु	0.47	0.97
14. उत्तर प्रदेश	0.16	0.35
15. पश्चिम बंगाल	0.41	0.83
पूरा भारत	0.33	0.61

साठ वाले दशक के दौरान जिन राज्यों में जोतदारों के मुकाबले कृषि श्रमिकों के अनुपात में काफी वृद्धि देखने को मिली, वे क्रमिक उतार से असम, कर्नाटक, उड़ीसा और बिहार थे। केरल, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र और तमिलनाडु में तो क्रमिक उतार से 1961 में ही जोतदारों के मुकाबले कृषि श्रमिकों का अनुपात बहुत ऊंचा था।

इसलिए केरल, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल या बिहार में अगर नरम या उग्र किस्म के कम्युनिज्म ने सिर उठाया है या उठा रहा है और असंतोष व्याप्त है—देश के कुछ भागों में हिंसा तक मची हुई है—तो यह काफी हद तक जमींदारी उन्मूलन के बारे में कांग्रेस नेताशाही की कथनी और करनी के बीच की खाई के चलते हैं। शायद कोई ऐसा क्षेत्र नहीं जहां सरकारी नीति और कार्यशीलता के बीच खाई उतनी चौड़ी हो, जितनी कि भूमिसुधारों के मामलों में है।

चरण सिंह, जो गरीब किसानों के हित के लिए इतने चिन्तातुर थे, जून 1951 से ही राजस्व विभाग को सम्भाले हुए थे और जैसा कि पाठक पिछले अध्यायों में देख ही चुके हैं, राज्य में भूमि के रिकार्ड पूरी दक्षता से सुव्यवस्थित रखे गए थे। तो फिर क्या बात थी उत्तर प्रदेश में कृषि श्रमिकों के प्रतिशत में तेज वृद्धि के पीछे, जिसकी 1961 और 1971 की जनगणना रिपोर्ट द्वारा पुष्टि हुई?

इस वृद्धि का कारण इस तथ्य में निहित है कि मार्च 1959 में जब चरण सिंह ने राज्य मंत्रिमंडल से इस्तीफा दे दिया, तब मुख्यमंत्री डॉ० सम्पूर्णानन्द ने अपने एक सहयोगी यानी ठाकुर हुक्म सिंह को राजस्व विभाग सौंप दिया, जो, जैसा कि पाठक बाद के पन्नों में पाएंगे, निजी खेती के 'पवित्र' नाम पर अपने काश्तकारों

से भूमि पुनर्ग्रहीत करने के जमींदारों के अधिकार के महान् प्रवक्ता थे। गरीबों और सुविधा वंचितों के लिए न सिर्फ उनके पास प्यार और सहानुभूति का अभाव था, बल्कि किसी तरह यदि किसानों को उनके हल की नोक के नीचे की जमीन से बेदखल कर दिया जाता, तब भी वे चिन्तित नहीं होते थे। न ही समाजवादी मुख्यमंत्री डॉ० सम्पूर्णानन्द खुद ऐसी किसी प्रणाली में विश्वास करते थे, जिसमें किसान अपने हल के नीचे की भूमि का स्वामी हो (लेकिन भूमि के राष्ट्रीयकरण या उस पर राज्य के स्वामित्व में उनकी आस्था थी)। परिणामतः उन्हें अधिवासियों से (या छोटे किसानों, ज्यादातर शिकमी काश्तकारों या मर्जी पर टिके काश्तकारों से, जो अधिकांशतः पिछड़े वर्गों से सम्बद्ध थे) कोई सहानुभूति नहीं थी, जिसका अर्थ था कि राज्य की कृषिमूलक संरचना में उपेक्षितों का कोई हितचिन्तक अब लखनऊ के सरकारी क्षेत्रों में नहीं रह गया था। अप्रैल 1959 के बाद से उन्हें जबरन या जालसाजी और राजस्व विभाग के अधिकारियों की मिली-भगत से बेदखल किया जाने लगा। चकबन्दी की कार्यवाहियों के दौरान, जबकि भूमि पर दावे को चुनौती दी जा सकती थी, इन अधिकारियों को नाजायज पैसा कमाने का अवसर मिल गया। परिणाम यह हुआ कि जोतदारों के मुकाबले श्रमिकों का अनुपात दो वर्षों की अल्प अवधि में ही, यानी अप्रैल 1959 से मार्च 1961 तक, तेजी से बढ़कर 8:100 से 16:100 हो गया।

यहां यह कहा जा सकता है कि ठाकुर हुक्म सिंह मार्च 1967 तक राजस्व मंत्री बने रहे तथा दिसम्बर 1960 में मुख्यमंत्री डॉ० सम्पूर्णानन्द की जगह श्री सी० बी० गुप्त ने ली, जो सितम्बर 1963 तक मुख्यमंत्री बने रहे। उनका स्थान लिया श्रीमती सुचेता कृपलानी ने और मार्च 1967 तक वे उसी पद पर बनी रहीं। इन तेजस्वी हस्तियों में से किसी को भी गांवों की आर्थिक स्थिति की जानकारी नहीं थी, न ही उपेक्षितों के प्रति कोई सहानुभूति थी। दरअसल, जैसा कि पाठक स्वयं आगे चलकर देखेंगे, श्रीमती सुचेता कृपलानी ने जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून के कुछ ऐसे मूल प्रावधानों को निरस्त करना चाहा था, जो उपेक्षित वर्ग के अनुकूल थे।

5

विरोधियों के साथ संघर्ष

कमजोर और असहाय लोगों के हित में राज्य मंत्रिमंडल के अपने ही सहयोगियों के विरुद्ध तथा अपने आपको 'समाजवादी' कहने वालों के विरुद्ध भी, चरण सिंह को जो संघर्ष करना पड़ा था उसका वर्णन संक्षेप में अगले पृष्ठों में किया गया है :

जैसा कि पिछले पृष्ठों में ही उल्लेख किया जा चुका है, जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून के अन्तर्गत सीर के काश्तकारों, साथ ही बिचौलियों की भूमि के रुपये 250 या उससे कम भू-राजस्व चुकाने वाले काश्तकारों और उनके शिकमी काश्तकारों को अधिवासी घोषित किया गया था। उन्हें अपने जमींदारों अर्थात् पूर्व-बिचौलियों या काश्तकार-प्रमुखों को वही रकम चुकानी थी जो वे पहले चुकाते आ रहे थे, तथा पांच वर्ष बीत जाने पर, मगर सरकार द्वारा अधिसूचित समय-सीमा के भीतर वे सर्किल-दर से या काश्तकार-प्रमुख को चुकाये जाने वाले लगान की रकम का 15 गुना भुगतान कर देने पर भूमिधारी का दर्जा हासिल कर सकते थे। मूल कानून के अनुसार जिन अधिवासियों के जमींदार पट्टा देते समय और 30 जून 1952 को भी शारीरिक दृष्टि से अपंग थे, उन्हें उसी तारीख (30 जून 1952) से बेदखल किया जा सकता था। फिर भी चरण सिंह की (जो उस समय महज संसदीय सचिव थे) इच्छा के विरुद्ध संशोधित कानून के अनुसार शारीरिक अपंगता के शिकार बिचौलियों के अधिवासी जब मर्जी हो बेदखल किए जा सकते थे, उन्हें असामी बना दिया जा सकता था।

अधिवासियों के बारे में एक और महत्त्वपूर्ण प्रावधान था, यानी अनुच्छेद 237 जिसके अन्तर्गत पूर्व-बिचौलिये या काश्तकार-प्रमुख अर्थात सरकार द्वारा अधिसूचित जिलों के भूमिधर और सीरदार, जिनके पास कोई सीर या खुदकाश्त भूमि नहीं थी, या जिनके पास आठ एकड़ से कम खुदकाश्त भूमि थी, वे अपने अधिवासियों को क्रमशः आठ एकड़ तक या खुदकाश्त भूमि आठ एकड़ से जितनी

कम हो उतनी भूमि से बेदखल करा सकते थे।

फिर भी धीरे-धीरे कांग्रेस पार्टी के एक बहुत ही सीमित क्षेत्र से यह मांग उभरने लगी कि अनुच्छेद 237 के अनुसार अधिसूचना अविलम्ब जारी की जानी चाहिए। मगर चरण सिंह का अपना प्रस्ताव था कि सभी अधिवासियों को शीघ्र अवसर दिया जाना चाहिए कि वे भूमिधर के दर्जे पर प्रोन्नत हो सकें तथा अनुच्छेद 237 के अन्तर्गत कोई अधिसूचना जारी ही नहीं की जाए।

1953 के शुरुआती महीनों में कांग्रेस ने विधान सभा उपचुनावों में कुछ सीटें गंवा दी थीं। उनमें से तीन उप-चुनाव बहराइच के अन्तर्गत हुए थे और तीन भूत-पूर्व जमींदारों या तथाकथित राजाओं द्वारा जीत लिए गए थे। मंत्रिमंडल के एक सदस्य ठाकुर हुक्म सिंह ने, जो उसी जिले से आए थे (और अगस्त 1947 से अप्रैल 1953 तक राजस्व मंत्री थे), पंडित पंत को अपने 18-20 अप्रैल 1953 के पत्र में लिखा कि कांग्रेस की पराजय के मुख्य कारणों में अधिवासियों और पटवारियों के सम्बन्ध में कांग्रेस की नीतियां, भविष्य में जमीन बटाई पर देने पर लगाई गई रोक और जोतों की चकबन्दी योजना शामिल है। इस पत्र से यही धारणा बनती है कि इसका लेखक वस्तुतः राज्य सरकार की भूमि सुधार के उपायों से सम्बन्धित पूरी नीति से ही नाखुश था। मगर एक महीने बाद ही चरण सिंह को एक पराजित उम्मीदवार श्री भगवान दीन मिश्र का 7 मई 1953 दिनांकित पत्र मिला जो सच को उजागर करता था। श्री मिश्र ने शिकायत की थी कि ज्यादातर ब्राह्मण और ठाकुर, जिनमें से कुछ के पास तो 200 से 4,000 बीघा (एक बीघा 5/8 एकड़ के बराबर) तक जमीन थी, अपने उन शिकमी काश्तकारों को बेदखल करने की कोशिश में लगे हुए थे जिनकी बेदखली सरकारी आदेश के तहत रोकी जा चुकी थी। वे शिकमी काश्तकार तथा वे वास्तविक काश्तकार या शिकमी काश्तकार भी जिनके नाम राजस्व रिकार्ड में दर्ज नहीं थे, कांग्रेस से नाराज थे क्योंकि उनका भविष्य अभी तक अनिश्चित था तथा जबरन बेदखली का खतरा उनके सामने था—वास्तविकता यह थी कि उनमें से कुछ को बेदखल किया जा चुका था।

राजस्व मंत्री चरणसिंह ने ये दोनों पत्र मुख्यमंत्री के पास अग्रसारित कर दिए जबकि उन्होंने कांग्रेस की पराजयों के कारण या कारणों पर विचार के लिए 15 जून 1953 को मंत्रिमंडल की एक अनौपचारिक बैठक बुलाई थी। कुछ मंत्रियों ने अपने मूल्यांकन मौखिक रूप से प्रस्तुत किए, मगर डॉ० सम्पूर्णानन्द ने उस बैठक में अपना लिखित नोट प्रस्तुत किया, जिसे नीचे पेश किया जा रहा है :

मुख्यमंत्री

हाल के उप चुनावों में कांग्रेस को जो गम्भीर पराजय झेलनी पड़ी उसके बारे में, हममें से हरेक की तरह मैं भी सोचता रहा हूं। यह मानना अर्थातिरेक

होगा कि हर जगह की घटना के लिए बिलकुल एक ही कारण जिम्मेदार है। खास-खास परिस्थितियां हैं जिन्होंने परिणामों को स्पष्टतः प्रभावित किया है। इलाहाबाद और बदायूं के मामले इस सम्बन्ध में सहज ही दिमाग में आ जाते हैं। आम चुनावों के दौरान आमतौर पर मुसलमानों का जो व्यवहार देखने में आया, वह इतना महत्त्वपूर्ण है कि कोई उसे नजरअन्दाज नहीं कर सकता। आम मुसलमानों के सवाल को दरकिनार भी करें तो यह एक विवाद रहित तथ्य है कि 1937 से ही हम अंसारी समुदाय को हर तरह से मदद पहुंचाने के लिए प्रयत्नशील रहे हैं। हमने केवल उनके आर्थिक कल्याण के प्रति ही विशेष चिन्ता नहीं दिखाई बल्कि उनकी शिक्षा पर भारी रकम भी खर्च की। इस प्रयास में हद से बाहर जाकर हमने मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था मुस्लिम लीग को विरोधी बना डाला, जिसने हम पर आरोप लगाया कि हम अपने राजनीतिक उद्देश्यों के लिए मुस्लिम समुदाय में फूट डालने की कोशिश कर रहे हैं। और तब भी, अंसारियों ने इलाहाबाद में लगभग एक होकर उस व्यक्ति के पक्ष में कांग्रेस के खिलाफ वोट डाले, जो कभी जाना-माना मुस्लिम-समर्थक नहीं रहा। यह एक ऐसा तथ्य है जिसका स्थानीय निकायों और विधान सभा के आगामी चुनावों में बढ़ा-चढ़ाकर महत्त्व दिया जाएगा तथा हमें इस पर पूरा ध्यान देना ही होगा। इसके सभी पहलुओं पर खुली बहस से भागना कर्त्तव्य के प्रति एक बहुत बड़ी चूक होगी।

सवाल के दूसरे पहलू भी हैं जिनकी देहाती क्षेत्रों में ज्यादा प्रासंगिकता है और जो निकट तथा दूर के भविष्य में सार्वजनिक मामलों पर भारी प्रभाव डालने के लिए बाध्य हैं। हमने उस मनोविज्ञान की घोरतम उपेक्षा करते हुए अपना महान प्रयोग शुरू किया है जिसके नियम राजनीतिक पार्टियों की मर्जी पर कतई बदले नहीं जा सकते, उसी तरह जैसे समुद्र की लहरों ने राजा केन्यूट के हुक्म नहीं माने। चीन और रूस की भूमि सुधार योजनाएं थीं, लेकिन उन्होंने उन्हें समाप्त करने की सावधानी बरती, जो बेदखल थे। रूस में तो उन्हें एकमुश्त खत्म कर दिया गया। चीन में उसी तरह सुनियोजित ढंग से उन्हें खत्म नहीं किया गया, लेकिन नागरिक सुविधाओं और कुछ हद तक नागरिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया। इसने उन्हें विक्षुब्ध होने की स्थिति में भी आबादी का हानिकारक हिस्सा नहीं रहने दिया। भारत में जमींदारों की आर्थिक क्षति हुई है तथा प्रतिष्ठा और प्रभाव उन्होंने गवाया है। उनमें से जिन्हें गांवों में रहना है वे कई मामलों में घोर यातना झेलने के लिए बाध्य हैं, लेकिन हमने उन्हें वोट देने का अधिकार दे रखा है, यानी हमें सत्ता से वंचित कर देने की शक्ति उनके पास है। ऐसा कोई कारण ही नहीं कि वे हमारी शासन सत्ता के विरुद्ध एक वर्ग के रूप में एकजुट न हों। एक

अच्छी खासी तादाद उन मध्यवर्गीय काश्तकारों की भी है जो हमारी भूमि सुधार नीति से प्रभावित हुए हैं और सोचते हैं कि जमीन और आमदनी का काफी बड़ा हिस्सा छिन जाने का खतरा उनके सिर पर है जिसके उपभोग करने की इजाजत कुछ साल पहले का कानून उन्हें देता था। यह हो नहीं सकता कि हमारे और उनके बीच कोई ज्यादा प्रेमभाव रह गया हो। हमें यह जरूर याद रहे कि उनकी संख्या बहुत ज्यादा है और देहातों में आज भी उनका प्रभाव है, उनकी संख्या के लिहाज से ठीक-ठीक जितना होना चाहिए, उसके अनुपात से शायद कहीं ज्यादा। हमने प्राथमिक स्कूलों के शिक्षकों को विरोधी बना लिया है। हम क्यों नहीं उनकी मांगें मंजूर कर सकते, इसकी वजह हमारे नजरिए से पूरी तरह जायज है, लेकिन जैसा कि हम जानते हैं किसी बहस का औचित्य आधार वाक्यों पर निर्भर करता है तथा जो हमारे आधार वाक्यों को स्वीकार नहीं करता—जैसे कि अल्प वेतनभोगी सरकारी कर्मचारी निश्चित रूप से नहीं करते—वह हमारे निष्कर्षो को स्वीकार नहीं करेगा। हमने फिलहाल उनके विरोध को तो खंडित कर दिया है लेकिन उनके भीतर पल रहे क्षोभ और गुस्से को दूर नहीं किया है—जो अवसर पाकर कभी भी फूट पड़ने को तैयार है। यह हो सकता है कि पटवारियों को समाज का ऐसा कोई प्रतिष्ठित तबका जुटाने में सफलता नहीं मिले, जो खुले तौर पर उनकी हिमायत करे, लेकिन उनका एक अच्छा खासा समूह है, देहाती स्तर के लिहाज से वे शिक्षित हैं और सामाजिक तथा आर्थिक बंदिशों के चलते एकजुट हैं। उनका अच्छा खासा प्रभाव है, खास तौर से उन समुदायों के सदस्यों पर जिनसे वे आते हैं। अभी हाल ही में चरण सिंह ने गाजियाबाद में कहा था कि उनकी दृष्टि में, दूसरे शब्दों में सरकार की दृष्टि में जो एक लक्ष्य है वह है साहूकारों को समाप्त करना। इसका अर्थ विरोधियों का एक और वर्ग पैदा करना है, जो प्रभावशाली भी काफी है। कुल मिलाकर स्थिति यह है कि व्यवहारतः हमने हर ऐसे वर्ग को अपना विरोधी बना लिया है जिसके पास शिक्षा, सम्पदा व सामाजिक दर्जा है और फलतः जो प्रभावशाली है। प्रसंगवश यहां यह कतई भुलाया नहीं जाना चाहिए कि ये लोग ही शांति और व्यवस्था के संरक्षण में कभी जाहिर तौर पर शक्तिशाली तत्त्व थे।

सवाल का एक और पहलू है जिस पर अवश्य ही विचार किया जाना चाहिए, हालांकि इसका उल्लेख तक करने को प्रतिगामी कदम समझ लिया जा सकता है। विवेकी प्रशासक हर तत्त्व को आत्मपरक और वस्तुपरक परिस्थितियों में रखकर जांचता है, भले ही उसे यह चाहे जितना अरुचिकर लगे। जिन वर्गों का मैंने ऊपर जिक्र किया है वे मोटे तौर पर ब्राह्मण, राजपूत,

भूमिहार, कायस्थ और वैश्य समुदायों से सम्बन्ध रखते हैं। इन जातियों और उपजातियों को आमतौर पर 'ऊंची जातियों' के समूह में रखा जाता है। जो उपाय हमने किए हैं और स्पष्टतः करना चाहते हैं उनमें निश्चित रूप से ऊंची जातियों के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव डालने की प्रवृत्ति है। यहां यह याद रखना जरूरी है कि विगत काल में कांग्रेस आमतौर पर इन्हीं ऊंची जातियों के लोगों से बड़े पैमाने पर समर्थन जुटाती रही है। वे सांस्कृतिक रूप से हमारे नेतृत्व से जुड़े रहे तथा हम वस्तुतः उन्हीं के कंधों पर सत्ता तक पहुंचे हैं।

अब हम देखें कि दूसरी तरफ हमारे लाभ क्या हैं? अनुमानतः हमारे सार्वजनिक कानूनों ने भूमिहीनों और बहुत ही कम जोत रखने वालों को लाभ पहुंचाया है। ऐसे लोगों में जो भारी संख्या में हैं मोटे-तौर पर पिछड़े वर्गों के हैं। सदियों के क्षोभ और दमित भावनाओं की उत्तेजना ने उन्हें औरों से अलग-थलग कर रखा है। शोषित संघ जैसे संगठन के नेतृत्व द्वारा वे सक्रिय होते रहे हैं और जबर्दस्त कांग्रेसी नेतृत्व के प्रति अविश्वास की भावना उनमें घर किए हुए है। हम उन्हें चाहे जो भी सहूलियतें प्रदान करें, वे सामुदायिक तौर पर हमारे शिविर में आने वाले नहीं। पूरी सम्भावना है कि इलाहाबाद में अंसारियों के साथ जो हमारा अनुभव रहा, उसी की पुनरावृत्ति उनके साथ हो। जिस प्रकार का नेतृत्व आसानी से उन तक पहुंच सकता है, उनका प्रतिनिधित्व प्रजा समाजवादी पार्टी और कम्युनिस्ट पार्टी जैसे दल करते हैं।

इसका यह अर्थ नहीं कि स्थिति निराशाजनक है। इसमें सिर्फ यही अर्थ निकलता है कि हमें एक स्पष्ट निर्णय लेना है। स्थिति को हाथ से जाने देना न केवल उपचुनावों में पराजय को आमंत्रण देना और फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्र में प्रभाव खो देना है, बल्कि अनियोजित क्रांति को खुला छोड़ देना है जो पूरे सामाजिक ढांचे को ही उड़ा ले जाएगी। जातियों और वर्गों के बीच असली खूनी लड़ाई ठन जाएगी और अब तक हमने जो कुछ हासिल किया है, उसका बहुत सारा भाग यों ही नष्ट हो जाएगा। मैं कह नहीं सकता कि उस विध्वंस के बाद चीजें किस शक्ल में होंगी। अतः हम जुझारू शक्तियों को विकास की धाराओं में लगाने का पक्का इरादा बना लें। पिछड़े वर्गों के उत्थान का काम रुक नहीं सकता। उन्हें मदद मिलनी है। वैसे लोगों के साथ सांस्कृतिक और बौद्धिक समानता हासिल करने में, जो अब तक इन सुविधाओं का उपयोग करते रहे हैं और फिर अवश्य ही उनकी आर्थिक स्थिति के विकास के उचित अवसर भी जुटाये जाने हैं। लेकिन इसके साथ ही, उच्च वर्गों को लुभाने का खेल भी जरूर खत्म होना है। हमें किसी भी तरह उनका विश्वास फिर से जीतना है। अगर लेनिन के नेतृत्व में सोवियत लोग एन० ई० पी० को अपना सकते थे, तो कोई कारण नहीं कि हमारा नेतृत्व वर्ग उसी गरिमा से

इस काम को अंजाम नहीं दे सके।

मैं इस टिप्पणी के साथ सुझाव नहीं पेश कर रहा हूं कि क्या-क्या कदम उठाये जाने चाहिए, लेकिन अगर स्थिति के मेरे पिछले विश्लेषण को सारत: सही समझ कर स्वीकार किया गया तथा पिछले पैराग्राफ के अन्त में सुझाये गए सिद्धांतों को अपनाया गया, तो उन्हें प्रयोग में लाने के लिए आवश्यक उपाय ढूंढ निकालना हमारे लिए सम्भव होना चाहिए। नेक इरादे रखने वाली कोई सरकार ज्यादा समय तक चल नहीं सकती अगर वह ऐसी नीतियां अपनाती है, जो नये मित्र दिए बगैर पुराने मित्रों को दूर कर देती है।

हस्ताक्षर
(सम्पूर्णानन्द)

जैसा कि पाठक लक्ष्य कर ही चुके होंगे, ऊपर की टिप्पणी में बल इस बात पर है कि यद्यपि कांग्रेस का निर्माण ऊंची जातियों ने ही किया था लेकिन कांग्रेसी सरकार के भूमि सुधार उपायों ने उन्हें कांग्रेस से विमुख कर दिया और केवल पिछड़े वर्गों के हितों को आगे बढ़ाया जो डॉ० सम्पूर्णानन्द की राय में, आज नहीं तो कल सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट पार्टियों में चले जाएंगे। इस तरह का रवैया एक ऐसे वरिष्ठ कांग्रेसी नेता का था जो अपने समाजवादी रुझानों के लिए मशहूर थे। पाठक आगे यह भी लक्ष्य करेंगे कि डॉ० सम्पूर्णानन्द की राय में सारी मुसीबत की जड़ चरण सिंह थे, जिनका उनके द्वारा गिनाये गए तीन उपायों में सीधा और चौथे में यानी प्राथमिक स्कूलों के शिक्षकों की हड़ताल की वापसी में अप्रत्यक्ष हाथ था। जिन शिक्षकों के सामूहिक इस्तीफे एक साथ मंजूर कर लिए गए थे, उन्हें जब लगा कि उनकी हालत भी पटवारियों जैसी ही होने वाली है, तो उन्होंने अपनी हड़ताल वापस ले ली।

मई या जून 1953 में राज्य सरकार ने जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून को समुचित संशोधनों के साथ पुराने बनारस राज्य में भी आगामी पहली जुलाई से लागू करने का निश्चय किया। क्षेत्र के कांग्रेसी विधायक, ठाकुर वंशनारायण सिंह और श्री गणेश राम यादव ने, जो कभी अच्छे कांग्रेसी थे लेकिन 1952 के आम चुनाव में कांग्रेस विरोधी उम्मीदवार के रूप में खड़े हो गए थे और अब फिर से कांग्रेस में शामिल होना चाहते थे, चरण सिंह को पूर्व बनारस राज्य में स्थित भदोही की सार्वजनिक सभा में भाषण के लिए आमंत्रित किया, जो भूमि सुधार लागू होने के उपलक्ष्य में उसी तारीख को आयोजित की गई थी। मगर बनारस (अब वाराणसी) की जिला कांग्रेस कमेटी का नेतृत्व उन दिनों, जैसा कि पूर्ववर्ती पृष्ठों में पाठकों ने लक्ष्य किया ही होगा, ऐसे व्यक्तियों के हाथ में था, जो अधिवासियों को कोई अधिकार देने तथा भविष्य में भूमि को पट्टे पर देने के मामले में रोक लगाने के खिलाफ थे। इसलिए उन्होंने बाबू सम्पूर्णानन्द और मंत्रि-

मंडल के सदस्य श्री कमलापति त्रिपाठी से यह सुनिश्चित करने के लिए कहा कि भदोही की प्रस्तावित सभा में चरण सिंह—प्रत्यक्षत: इस आधार पर कि गैर-कांग्रेसी के आमंत्रण पर वे भदोही जा रहे थे—भाग न लें, जो एक जुलाई 1953 को क्षेत्र में जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून लागू होने के सिलसिले में होने वाली थी। श्री कमलापति त्रिपाठी ने, जो बनारस के निवासी थे, चरण सिंह को इस सम्बन्ध में एक पत्र लिखा जिसका उचित उत्तर उन्होंने दे दिया। श्री त्रिपाठी को दिए गए अपने उत्तर की प्रतिलिपि के साथ उन्होंने उसी समय एक नोट मुख्यमंत्री पंडित गोविन्द बल्लभ पंत के पास भी भेजा। पंतजी ने उन्हें अपना वचन पूरा करने और उस सभा को सम्बोधित करने के लिए कह दिया जैसा कि उन्होंने किया। सप्ताह भर या कुछ और बाद जिला कांग्रेस कमेटी ने चरण सिंह की निन्दा करते हुए एक प्रस्ताव पारित किया और प्रदेश कांग्रेस कमेटी से उनके खिलाफ अनुशासन की कार्रवाई करने के लिए कहा।

उनके प्रति वाराणसी के कांग्रेसियों के रवैये का एक और उदाहरण 17 मई 1953 को वाराणसी से शुरू होता है। चरण सिंह सभी डिवीजनों की सार्वजनिक सभा को सम्बोधित करने वाले थे जिसमें ग्राम पंचायतों के प्रतिनिधियों, राजस्व विभाग के अधीनस्थ कर्मचारियों और कांग्रेस कार्यकर्ताओं को आमंत्रित किया गया था। उसका मुख्य उद्देश्य भूमि प्रबन्धन कमेटी के कर्त्तव्यों और अधिकारों से उन्हें परिचित करना था। मगर जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष पंडित श्यामधर मिश्र द्वारा प्रेरित किए जाने पर वाराणसी के प्रमुख कांग्रेस जनों ने 17 मई 1953 को जिला मुख्यालयों में आयोजित सभाओं में न तो भाग लिया, न ही उनमें रुचि दिखाई।

अधिवासियों के बारे में पहले कही गई बातों को दृष्टि में रखते हुए मुख्यमंत्री पंडित गोविन्द बल्लभ पंत ने चरण सिंह से अधिवासियों कीं समस्या पर एक नोट तैयार करने के लिए कहा। चरण सिंह ने बाद में विस्तृत वांछित नोट तैयार किया और 7 अगस्त 1953 को पंतजी के पास भेज दिया। 'अधिवासियों की समस्या' शीर्षक वाला यह लम्बा नोट यहां संक्षित फार्वाडिग नोट सहित प्रस्तुत है, बीच के गौण अंश और अंक तालिकाओं को छोड़ दिया गया है :

गोपनीय

मुख्यमंत्री

जैसा कि मेरा वादा था, अधिवासियों की समस्या तथा जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून के तहत अधिसूचना जारी की जाने के औचित्य या अनौचित्य पर एक नोट मैंने तैयार किया है। मुख्यमंत्री का सुझाव था कि कुछ जगहों पर छुटपुट ढंग से सर्वेक्षण किया जाए, यह जानने के लिए कि अगर

अधिसूचना जारी की गई तो कितने अधिवासी प्रभावित होंगे, जितना भूक्षेत्र उनके पास है, उन भूमिधरों और सीरदारों (पहले के जमींदारों और प्रमुख काश्तकारों) के जीवन-निर्वाह के वर्तमान साधन कौन से हैं जो अनुच्छेद के अन्तर्गत आवेदन करने के अधिकारी होंगे, आदि। इस तरह का सर्वेक्षण मुझे आसान नहीं लगता, न ही शायद इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक कर्मचारी उपलब्ध होंगे। फिर जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार रिपोर्ट के दूसरे खण्ड में कुछ आंकड़े दिए जा चुके हैं जो समस्या के आयामों की अच्छी खासी जानकारी देते हैं।

मैं इस नोट की प्रतिलिपि मंत्रिमंडल के कुछ ऐसे सदस्यों के पास भेजना चाहता था जो मेरी समझ से या तो अधिसूचना जारी करने के पक्ष में हैं या अभी तक इसके बारे में अपनी राय पक्की नहीं कर पाए हैं। लेकिन यह नोट अनजाने में कहीं गलत हाथों में न पड़ जाए, इसलिए मैंने वह विचार छोड़ दिया।

हस्ताक्षर,

अनेक धन्यवाद। (चरण सिंह)

7 अगस्त 1953

6

अधिवासियों की समस्या पर टिप्पणी

जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून के तहत सीर के काश्तकार और उन बिचौलियों की जमीन के दखलकार, जो 250 रुपये या उससे कम भू-राजस्व के रूप में भुगतान करते थे तथा शिकमी काश्तकार भी अधिवासी घोषित किए जा चुके थे। वे जमींदारों यानी पूर्व-बिचौलियों या काश्तकार-प्रमुखों को वही रकम अदा करते रहे थे तथा पांच साल बीतने पर, मगर सरकार द्वारा अधिसूचित समय सीमा के भीतर वे सर्किल-दर या उस लगान का 15 गुना भुगतान कर देने पर भूमिधारी का दर्जा हासिल करने के हकदार हो जाएंगे, जिसका भुगतान अधिवासी के रूप में वे अपने काश्तकार-प्रमुख को करने के लिए बाध्य थे। मूल कानून के अनुसार वे अधिवासी बेदखल किए जा सकते थे जिनके जमींदार पट्टे पर जमीन देते समय और 30 जून 1952 को भी विकलांग व्यक्ति थे, लेकिन पूर्वोक्त तारीख के बाद पांच साल की अवधि बीत जाने पर ही ऐसा हो सकता था। फिर भी संशोधित कानून अब विकलांग व्यक्तियों के अधिवासियों को बेदखली के योग्य करार देता है अर्थात् इसने उन्हें असामी बना दिया है।

अधिवासियों के बारे में एक और महत्त्वपूर्ण प्रावधान है अनुच्छेद 237, जिसके अन्तर्गत भूतपूर्व बिचौलिये या काश्तकार-प्रमुख यानी सरकार द्वारा अधिसूचित जिलों के वे भूमिधर और सीरदार जिनके पास सीर या खुदकाश्त की कोई जमीन नहीं, या जिनकी खुदकाश्त की जमीन का रकबा आठ एकड़ से कम है, वे आठ एकड़ तक या अगर कोई खुदकाश्त जमीन आठ एकड़ से जितना कम पड़ती है, उतनी जमीन से अपने अधिवासियों को बेदखल करा सकते हैं।

एक मांग अब यह भी की जा रही है, हालांकि यह सचमुच ही कांग्रेस पार्टी के एक सीमित तबके से उठी है, कि अनुच्छेद 237 को ध्यान में रखते हुए एक अधिसूचना जारी की जानी चाहिए। इसके विपरीत मेरे प्रस्ताव हैं कि सभी अधिवासियों को अभी भी भूमिधारी की हैसियत पर प्रोन्नत होने का अवसर

दिया जाना चाहिए तथा अनुच्छेद 237 के तहत अधिसूचना तो जारी की ही नहीं जाए।

जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून ने आदमी और आदमी के बीच के मनोवैज्ञानिक और वैयक्तिक सम्बन्धों के क्षेत्र में जबरदस्त क्रांति उपस्थित कर दी है। हमारे भूमि सुधारों के इस पहलू और अन्य पहलुओं पर बहुत कुछ कहा जा सकता है तथा उनकी दूरगामी प्रकृति पर हम अवश्य ही गर्व कर सकते हैं। आज कुल कृषि भूमि मोटे तौर पर 40 प्रतिशत भूमिधारी और 60 प्रतिशत सीरदारी काश्तकारी के अन्तर्गत है। यह कानून हालांकि सीरदारों के जीवन में कोई ठोस आर्थिक परिवर्तन नहीं ला पाया है (क्योंकि राज्य को वे अब वही लगान चुका रहे हैं जो पहले जमींदारों को चुकाते थे), फिर भी जमींदारी प्रथा के उन्मूलन का मतलब उनके लिए एक महान सामाजिक परिवर्तन है तथा अब वे सिर उठाकर चल सकते हैं। लेकिन जहां तक हमारे किसानों के अपेक्षाकृत कमजोर और गरीब तबके का सम्बन्ध है, बदलाव बिल्कुल भी नहीं आया है—यहां तक कि वैयक्तिक सम्बन्धों में भी कोई बदलाव नहीं आया है। अधिवासी न केवल वही लगान चुका रहे हैं, जो कि औसतन सीरदारों द्वारा देय लगान के दोगुने से ज्यादा है, बल्कि पहले की तरह उन्हीं लोगों को चुका रहे हैं; वे आज भी असामी ही हैं तथा उनका भविष्य अनिश्चित है। उनके लिए जमींदारी प्रथा गई ही नहीं; उन्हें कोई आर्थिक सुरक्षा नहीं मिली। उन्हें ऐसी कोई ज्यादा उम्मीद नहीं कि उसे मन में संजोएं, क्योंकि अनुच्छेद 237 की तलवार उन पर लटक रही है तथा कोई नहीं जानता कि वह कब और कहां गिरेगी। हमारे राजनीतिक विरोधियों ने इस स्थिति का पूरा लाभ उठाया है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि हमारे विरोधी क्या सोचते और क्या कहते हैं, लेकिन जिस बात ने मुझे चौंकाया वह यह जानकारी है कि हमारे अपने क्षेत्रों में भी अनुच्छेद 237 के अन्तर्गत अधिसूचना जारी करने के प्रस्ताव पर गम्भीरता से सोचा जा रहा है।

पिछले दिनों मैं पूर्ववर्ती बनारस राज्य में जमींदारी उन्मूलन पर आयोजित सभा को सम्बोधित करने के लिए भदोही गया था, जहां श्रोताओं को यह समझा पाने में मुझे काफी कठिनाई हुई कि जमींदारी उन्मूलन का मतलब उनके लिए कोई बेहतर बदलाव है। ऐसा इसलिए कि खुदकाश्त वाले मंजूरीदारों और अन्य बिचौलियों के पास चूंकि निश्चित दर (41 प्रतिशत) और दखली काश्तकारी (41 प्रतिशत) की कुल 82 प्रतिशत जोत भूमि है, इसलिए वे स्वतः भूमिधारी का दर्जा प्राप्त कर लेंगे। अगर कुछ होगा तो यही कि काश्तकारी जोत वाले किसानों के अधिकारों में कमी आएगी। और जब तक अनुच्छेद 237 मौजूद है, उन गरीब किसानों के सामने, जो मातहती काश्तकारी की कुल 21 प्रतिशत भूमि पर खेती करते हैं अर्थात् अधिवासी हैं, मैं यह घोषणा नहीं कर सकता कि

उपभोग का पक्का अधिकार उन्हें दे दिया गया है तथा अब बेदखली से आशंकित होने की जरूरत नहीं है।

अनुच्छेद 237 के अन्तर्गत अधिसूचना जारी करने के पक्ष में तर्क कुछ इस तरह दिए जाते हैं :

कि वैसे भूमिधरों और सीरदारों को संभलने और अपनी उस जमीन को जोतने का एक अवसर दिया जाना चाहिए, जो उन्हें पट्टे पर तब मिली थी जबकि कानून उसकी अनुमति देता था, कम से कम आठ एकड़ तक ही सही; कि जमीन रखने का उन्हें ज्यादा अधिकार है; कि तथाकथित शिकमी काश्तकार वस्तुत: उनके मजदूर या हलवाहे थे तथा वह जमीन उन्हें अपने पास रखने की छूट नहीं होनी चाहिए, जो मजदूरी के एवज में उन्हें दी गई थी।

अब, आखिरी तर्क से निपटने के लिए तो आंकड़े ही उपलब्ध नहीं, बल्कि ऐसा प्रतीत होगा कि खेत में मजदूरी के एवज में जमीन रखने वाले शिकमी काश्तकारों के रूप में ज्यादा लोग दर्ज ही नहीं किए गए। खतौनी के पहले भाग में बिचौलियों से किसी सेवा के एवज में जमीन पाने वाले जिन लोगों के नाम दर्ज हैं, उनकी संख्या कोई बड़ी नहीं है। उन्हें सीरदार घोषित किया जा चुका है, इसलिए उनकी बेदखली का सवाल ही नहीं उठता। फिर, जो प्रासंगिक और ज्यादा महत्त्वपूर्ण है, वह यह कि अगर किसी का 'हलवाहा' शिकमी काश्तकार के रूप में दर्ज है तो इसका मतलब है कि काश्तकार-प्रमुख या सीरदार वास्तव में खेती कर रहे थे और जोत के तकरीबन 90 प्रतिशत पर अपना दखल जमाए हुए थे। यह लगभग बेतुका है कि किसी गरीब आदमी से जमीन का एक छोटा टुकड़ा उस आदमी को देने के लिए ले लिया जाए जिसके पास कम से कम नौ गुना अधिक जमीन पहले से ही है।

जमीन अपने पास रखने या वापस लेने के दो व्यक्तियों के आपेक्षिक अधिकारों के बारे में मेरा उत्तर यह है कि भूमि प्रकृति की देन है और जो आज इसका समुचित उपयोग कर रहा है, उसे उस व्यक्ति की तुलना में जमीन अपने पास रखने का अधिकारी पहले होना चाहिए जिसने उसका सही उपयोग उस समय नहीं किया जब वह कर सकता था, बल्कि किसी और आदमी को पट्टे पर देने के बजाए उसके श्रम का शोषण करना ही पसन्द किया।

इस तर्क के बारे में कि भूतपूर्व बिचौलियों और काश्तकार-प्रमुखों को, जो जमींदारी उन्मूलन से पहले खुद खेती नहीं करते थे, अब अपनी जमीन वापस लेने का एक अवसर मिलना चाहिए ताकि लाभकारी जोत वे बना सकें। मेरा निवेदन है कि, चूंकि 20 या 30 एकड़ जोत भूमि रखने वाले (8 एकड़, 6.25 एकड़ या उससे कम भूमि वाले तो काफी कम हुए) भी अगर अपनी सारी जोत पट्टे पर लगा देते तो लगान से गुजारा नहीं कर सकते थे। ऐसे भूमिधरों और सीरदारों

के (यानी भूतपूर्व जमींदारों या काश्तकार-प्रमुखों के) पास आज खुदकाश्त की अपनी जमीन नहीं। लगान से अपनी पर्याप्त आमदनी सुनिश्चित करने के लिए या तो वे विशाल क्षेत्र के स्वामी बने, ऐसे मामलों में उन्हें मुआवजा काफी मिलेगा, या अगर महज छोटा-सा ही क्षेत्र उनके पास था, तो आमदनी के अन्य स्रोत उन्होंने जुटा लिए जिन्हें खेती की अपेक्षा कम श्रम-साध्य और ज्यादा लाभकारी समझा तथा प्राथमिकता दी। क्या जमीन उसे दें जो या तो मुआवजे के रूप में भारी रकम पाएगा या पहले से रोजगार में लगा है यानी उसे आमदनी या रोजगार का एक और जरिया दे दें—ऐसे आदमी को धकियाते और रोजगार से वंचित करते हुए जिसे समान रूप से हमारी चिन्ता का पात्र होना चाहिए? फिर, चूंकि अधिवासियों की जोतें औसतन एक एकड़ से भी कम हैं, इसलिए हमें एक की खातिर नौ अपेक्षाकृत गरीबतर लोगों को बेदखल करना पड़ेगा—उस एक की खातिर, हमें याद रहे, जिसके धनुष में दूसरा तीर भी है।

प्रत्युत्तर में यह कहा गया है कि अधिवासियों को चुकाए जाने वाले लगान बनारस डिवीजन में खासतौर से ज्यादा हैं, यहां तक कि पचास, अस्सी या सौ रुपये प्रति एकड़। इसका अर्थ यह निकला कि छोटे-छोटे पट्टादाता अब तक सिर्फ लगान पर गुजारा कर सके या करते रहे हैं। इसके अपवाद इने-गिने हो सकते हैं, लेकिन सामान्यत: नहीं। मैंने अधिवासियों को प्रति एकड़ देय लगान की दरों के बारे में कमिश्नरी के तथा आजमगढ़ के भी जिला मजिस्ट्रेटों से पूछताछ की थी। फसली 1359 से सम्बन्धित आंकड़े निम्न प्रकार हैं :

जौनपुर	13.00 रु.
गाजीपुर	9/8 रु.
बनारस	19/9 रु,
बलिया	10.00 रु.
आजमगढ़	8.00 रु.

हम अवश्य ही याद करें कि 1939 के काश्तकारी कानून के तहत काश्तकारों को जमींदारों की जमीनों में पुश्तैनी अधिकार प्राप्त थे, यह गौर किए बिना कि उनके (जमींदारों के) पास खुदकाश्त की जमीनें थीं या नहीं तथा वे शारीरिक दृष्टि से सक्षम या अक्षम थे। ऐसे अधिकार उन खुदकाश्त जमीनों में भी प्राप्त थे जो या तो सीर का स्वरूप नहीं रखती थीं, या रखती भी थीं तो ऐसे स्वामी की सम्पत्ति थीं जो 250 रुपये से ज्यादा भू-राजस्व प्रतिवर्ष चुकाया करते थे। जमींदार अपनी निजी खेती के लिए उन काश्तकारों को बेदखल नहीं कर सकते थे। फिर भी यह सच है कि जो जमींदार भू-राजस्व के रूप में 250 रुपये से कम रकम चुकाते थे, उनकी सीर जमीन के काश्तकारों को पुश्तैनी अधिकार प्राप्त नहीं थे। लेकिन 'सीर' जो एक संस्कृत शब्द है, का अर्थ 'हल' है, इसलिए

'सीर भूमि' का अर्थ वह भूमि है जो भूस्वामी की वास्तविक खेती के अन्तर्गत आती है। अतः जिस भूमि पर वास्तव में खेती नहीं की जा रही है, उसमें सीर अधिकारों को फर्जी और कानूनन अमान्य करार दिया जाना चाहिए—यह ख्याल किए बिना कि उस भूमि का क्षेत्रफल या भूस्वामी द्वारा चुकाया जाने वाला भू-राजस्व कितना है। जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून ने वास्तव में यही किया है, विकलांग सीर धारकों की भूमि को अलग रखते हुए, जिनको रैयतों को मर्जी पर बेदखली के योग्य ठहराया गया है।

अब अगर अधिवासियों को बेदखल होने की बात उठती है, क्योंकि जिनसे उन्होंने जमीन ली, उनके पास खुदकाश्त में सीर जमीन निश्चित रकबे से कम है या बिल्कुल नहीं है, तो वही तर्क उन बिचौलियों के सीरदारों की बेदखली के पक्ष में दिया जा सकता है जिनके पास कभी कोई सीर नहीं थी या जिन्होंने किसी जमीन पर खेती की ही नहीं, लेकिन अब वैसा करना चाहते हैं। अगर इस स्थिति को स्वीकार किया जाता है और अनुच्छेद 237 के तहत अधिसूचना जारी की जाती है तो जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून को फिर से नया रूप देना पड़ेगा और परिणाम घोर अनर्थकारी होंगे।

जहां तक काश्तकार-प्रमुख द्वारा अधिवासियों की बेदखली के दावे की बात है, उनका मामला अभी भी कमजोर है। उन्होंने खुद खेती करने के लिए भूस्वामी से जमीन ली थी। वैसा करने के बदले वे शोषक बन बैठे। शारीरिक दृष्टि से सक्षम ऐसे काश्तकारों को भूमि वापस किए जाने के पक्ष में एक भी तर्क नहीं है, जिन्होंने खुद जितना लगान चुकाते थे, उससे ज्यादा रकम उगाहने के लिए अपनी जोतें समाज के कम खुशनसीब सदस्यों को पट्टे पर दे दीं।

इस सम्बन्ध में यह याद किया जाना महत्त्वपूर्ण है कि सभी अधिवासियों की बेदखली, कुछ महीनों और राज्य के कुछ हिस्सों को छोड़कर पिछले सात वर्षों से, यानी 1946 में जब पिछले कांग्रेस मंत्रिमंडल ने कार्य भार संभाला था तभी से, रुकी हुई है। यह 1937-39 के प्रथम कांग्रेस मंत्रिमंडल के पूरे कार्यकाल में भी स्थगित थी तथा 1940-44 के दौरान अवध में शिकमी काश्तकारों की बेदखली का स्थगन जारी रहा। अतः 1938 से लगातार अपनाई जा रही हमारी नीतियों के चलते वे यह उम्मीद पालने लगे हैं कि उन्हें बेदखल नहीं होना पड़ेगा। क्या वह उम्मीद अंततः धूल में मिला दी जाए ?

आचार्य विनोबा के आंदोलन को कांग्रेस कार्य समिति और देशभर की कांग्रेस सरकारों का समर्थन प्राप्त है। इसका उद्देश्य उन्हें भूमि दिलाना है जो आज भूमिहीन हैं। जबकि अगर अधिसूचना जारी की जाती है तो वह उन लोगों को भूमिहीन बना देगी जिनके पास आज भूमि है। सचमुच यह एक विडम्बना होगी

तथा शोषितों के प्रति सहानुभूति और उन आदर्शों के प्रति निष्ठा की हमारी घोषणाओं पर एक अजीब टिप्पणी होगी जिनके लिए आचार्य विनोबा जी आज खड़े हैं।

फिर, यही कोई आठ महीने पहले हमने महज उनके अधिकारों को मान्यता देने के लिए जो सिर्फ अधिवासी की श्रेणी में आते हैं, भूमि सुधार (पूरक) कानून बनाया। अनुच्छेद 237 के तहत अधिसूचना का अर्थ होगा कि महज कुछ सप्ताह या महीने पहले दाहिने हाथ से जो दिया उसे बाएं हाथ से ले लिया। कांग्रेस अब तक जिन बातों के लिए जूझती रही है उन सबका यह मजाक होगा।

आश्चर्य होता है यह देखकर कि हमारे कुछ दोस्त अधिवासियों के बारे में अपनाई गई नीति को कांग्रेस की बढ़ती अलोकप्रियता का एक कारण मानते हैं जैसा कि हाल के विधान सभा उपचुनावों में एक के बाद एक हमारे उम्मीदवारों की हारों से आभासित हुआ। फिर भी वास्तविकता यह है कि जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून द्वारा शिकमी काश्तकारों को दिए जाने वाले अधिकारों का सवाल तो मुद्दे में कहीं था ही नहीं। अलीगढ़ या इलाहाबाद जैसे शहरों या बदायूं के अर्ध-शहरी निर्वाचन क्षेत्र में इसे उठाया जाना सम्भव नहीं था; इसके विपरीत देवरियां में हमारे विरोधियों द्वारा हमें प्रतिगामी करार देने के इरादे से नारे उछाले गए थे क्योंकि भूमि किसानों के बीच समान रूप से बांटी या भूमिहीनों को दी नहीं गई थी; बहराइच में हमारे भूमि सुधारों को पराजय के आधा दर्जन कारणों में से एक के रूप में गिनाया गया क्योंकि कहा गया कि शिकमी काश्तकारों (अधिवासियों) को अधिकार प्रदान किए जाने से काश्तकार-प्रमुख विरोधी बन गए और शिकमी काश्तकार इसलिए विमुख हो गए कि जोर-जबर्दस्ती से उनके वे अधिकार छीने जा रहे थे (मुझे यह बताने की जरूरत नहीं कि क्यों), जो कानून के तहत उन्हें दिए गए थे। सीतापुर में कुल मिलाकर यह जोतों की चकबंदी का कानून था जो एक मुद्दा था और अधिबासियों का सवाल तो जिक्र में बिल्कुल आया ही नहीं। यह मान लेने पर कि सीरदारों और भूमिधरों में अपने अधिवासियों को बेदखल करने का अधिकार न मिलने के कारण हमारे खिलाफ वोट दिए, हमें महज इसी कारण से बहुत से अधिवासियों के वोट मिलने चाहिए थे, क्योंकि हर सीरदार और भूमिधर के वोट हमारे खिलाफ गए थे। यह भी भुला दिया जाता है कि ऐसे सीरदार और भूमिधर जिनकी जमीनों पर कोई अधिवासी नहीं है, वे संख्या में उनसे कई गुना ज्यादा हैं जिनकी जमीनों पर अधिवासी हैं। (क्योंकि खतौनी के खण्ड-1 में दर्ज व्यक्तियों की संख्या 2,15,57,000 है जबकि खतौनी के खण्ड-2 में जो दर्ज हैं, उनकी संख्या सिर्फ 41,21,003 है।) यह सवाल कि क्यों इन लोगों ने हमें वोट नहीं दिए, जमींदारी उन्मूलन और भूमि

सुधार कानून के आलोचकों द्वारा अनुत्तरित हैं।

हो सकता है देवरियां और बहराइच में कुछ अधिवासियों ने भी हमारे खिलाफ वोट दिए। लेकिन सवाल यह है कि अगर उन्होंने वैसा किया तो क्या शिकायत का हमें ज्यादा अधिकार है ? यह कहना फिर से दुहराना होगा कि वे उन्हीं पुराने जमींदारों और काश्तकार-प्रमुखों को वही लगान चुकाते हैं क्योंकि बेदखली का भय आज भी उन्हें बहुत ज्यादा है। उनके लिए जमींदारी उन्मूलन की घण्टी अभी तक नहीं बजी है। यही नहीं, उनमें से बहुतेरे लोग राज्य में जमींदारी उन्मूलन के लिए निश्चित रूप से और भी बुरी स्थिति में हैं। अब जबकि काश्तकारों के विभिन्न वर्गों के अधिकारों को स्थायी आधार पर वैध बनाया जा रहा है, तो जिन अधिवासियों के नाम राजस्व के कागजात में दर्ज नहीं, उनकी बात तो दरकिनार, जिनके दर्ज हैं, उनके भी एक अच्छे खासे प्रतिशत को बल प्रयोग द्वारा उनकी जोतों से बाहर कर दिया है और जो लोग आज भूमिहीन बना दिए जाएंगे, वे हमेशा के लिए वैसे ही रहेंगे, क्योंकि भविष्य में पट्टा देने पर रोक लगा दी गयी है और वह ठीक ही है।

तो फिर इसमें अचरज नहीं कि कांग्रेस सरकार के प्रति कृतज्ञ रहने या जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून को लेकर उत्साहित होने की वे कोई वजह नहीं देखते।

अनुच्छेद 237 के तहत अधिसूचना जारी करने की ही मांग केवल नहीं है, बल्कि अधिवासियों के पक्ष में प्रविष्टियों को दुरुस्त करने की सुनिश्चितता के लिए बनाया गया भूमि सुधार (पूरक) कानून भी जिस ढंग से आलोचना की गिरफ्त में आया है, उसने मुझे कठघरे में खड़ा अभियुक्त जैसा बना दिया है या मुझे वैसा महसूस करा दिया है। फिर भी मुझे जिस बात ने दुःखी किया है, वह यह तथ्य है कि इस ओर इससे सम्बद्ध सवालों पर बहसों के दौरान जो विचार व्यक्त किए गए, वे उस वातावरण के लिए बिल्कुल बेमेल थे, जिसमें कांग्रेस कर्मी पिछले साढ़े तीन दशक से सांस लेते और काम करते रहे हैं। समाज के खास-खास वर्गों और तबकों का उल्लेख किया गया है, बिना यह सोचे-समझे कि हम समग्र जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह भुला दिया गया है कि हम लोग तेजी से बदलते गतिशील युग में रह रहे हैं। जहां तक भूमि से सम्बन्धित मोर्चे का—और यह सबसे महत्त्वपूर्ण मोर्चा है—सवाल है, उत्तर प्रदेश में पहल का सूत्र अभी तक हमारे हाथों में है। इस बात को हमारे पुराने शत्रु भी अपनी आपसी बातचीत में स्वीकार करते हैं। जैसे ही पहल का यह सूत्र दूसरों के हाथों में जाएगा, कांग्रेस विगत की वस्तु हो जाएगी और इतिहास के कबाड़ के ढेर में फेंक दी जाएगी, जैसा कि बहुत से संगठनों के साथ अतीत में हुआ है।

जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून एक क्रांतिकारी उपाय था, लेकिन

कम से कम आरम्भिक अवस्था में इसके कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए कांग्रेस कर्मियों द्वारा सकारात्मक रूप से कुछ किए जाने की जरूरत नहीं पड़ी। फिर भी भूमि सुधार (पूरक) कानून विस्तृत सम्भावनाओं से भरा कदम था, जिसका पूरा लाभ उठाने के लिए सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के सक्रिय सहयोग की आवश्यकता थी। लेकिन कांग्रेस कर्मी सोते रहे या कुछ जगहों में अपने बहुवार्षिक चुनाव लड़ते रहे, परिणामतः हमारे वे विरोधी, जिन्होंने गरीब कृषक समुदाय से सम्पर्क साध लिया था, उनका नेतृत्व करने लगे। अगली कतार के हमारे कुछ नेताओं ने कांग्रेस से ऐसे तत्त्वों को, जो जनता की जरूरतों और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व नहीं करते, निकाल बाहर करने या स्थानीय कांग्रेस कार्यकर्ताओं को क्रियाशील बनाने के बदले मुड़कर अपना सारा रोष मुझ पर उतार दिया। मैंने प्रशंसा की उम्मीद नहीं की थी, लेकिन अकल्पनीय ढंग से भी मैंने उस निन्दा की अपेक्षा नहीं की थी, जिसका मुझे सामना करना पड़ा था। ऐसा लगेगा कि हममें से कुछ लोग हमारे प्रगतिशील उपायों पर, जिनमें व्यापक रूप से स्वीकृत जोतों की चकबन्दी का कानून भी शामिल है, दुबारा सोचने लगे हैं तथा अपने कदमों को पीछे लौटाने के लिए उत्सुक हैं, यह अनुभव किए बिना कि हमें अपने राजनीतिक शत्रुओं को कोई मौका नहीं देना चाहिए, और यह कि अगर हमारा गैर-सरकारी संगठन निष्क्रिय हो जाता है तथा उत्साह गंवा बैठता है, तो नीतियों में संशोधन करने या चुपचाप खड़े रह जाने से—पीछे हम भले ही न लौटें—हमारी बरबादी टल नहीं पाएगी।

भूमि सुधार (पूरक) कानून के बारे में एक तर्क यह दिया जाता है कि भूमिहीन लोगों के गिरोह भूमिधरों और सीरदारों को उनके कानूनन जायज कब्जे से हटाने पर तुले हुए हैं और इस तरह अराजकता को उकसाया और बढ़ावा दिया जा रहा है, मानो कि यह सब मेरी ही चूकों और नीतियों का परिणाम हो। मैंने नैनीताल में कहा था कि ऐसा कुछ कहीं न तो हुआ है, न ही आशंकित होने की आवश्यकता है। बरसात आए अब पांच सप्ताह से ज्यादा हो चुके हैं, लेकिन हमने राज्य में कहीं भी भूमि को लेकर दंगे या हत्याएं होने के बारे में नहीं सुना है।

भूमि सम्बन्धी विवादों में दोषी भूस्वामी लोग हैं या भूमिहीन लोग और इसके बारे में कि भूमि सुधार (पूरक) कानून न्याय संगत था या नहीं (मैं यहां कहना चाहूंगा कि इस उपाय पर प्रवर समिति सर्वसम्मति से चाहती थी कि सरकार और भी आगे बढ़े), मेरे लिए सिर्फ भूमि सुधारों के ओ० एस० डी० श्री नासिर हुसैन की 28 नवम्बर 1952 की रिपोर्ट के निम्नांकित उद्धरण की तरफ ध्यान दिलाना जरूरी है, जिन्हें जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून लागू करने के उद्देश्य से पूर्व बनारस राज्य में भूमि काश्तकारी के अध्ययन के प्रति-नियुक्त किया गया था :-

(7) खतौनी के खण्ड-2 की क्रमश: 13, 14 और 15 संख्यक श्रेणियों में दर्ज सार और लगान रहित अनुग्राही के कब्जे में भूमि । इन श्रेणियों के कब्जे में वर्ष 1358 फसली में रु० 11,59,060 लगान के साथ कुल जोत क्षेत्र 5,125 एकड़ था। कुल जोत क्षेत्र का यह 21 प्रतिशत है तथा लगान का अनुपात रु० 19/10 बैठता है, जो काश्तकार-प्रमुख के नकदी लगान वाले क्षेत्र के रु० 5/2- औसत अनुपात से साढ़े तीन गुना अधिक है । वर्ष 1355 फसली की तुलना में कुल क्षेत्र में काफी कमी आई है। वर्ष 1355 फसली में खतौनी के खण्ड-2 में दर्ज क्षेत्र रु० 20,69,998 लगान के साथ 1,03,022 एकड़ था और आनुपातिक लगान रु० 20/- प्रति एकड़ के साथ कुल जोत क्षेत्र का वह 41.6 प्रतिशत था। ऐसा लगता है क्षेत्र में अचानक यह कमी (राज्य के उत्तर प्रदेश में) विलय के बाद के वर्षों में आई।

(यहां कोष्ठक में यह उल्लेख किया जा सकता है कि भदोही में पिछली 1 जुलाई की जिस किसान सभा को मैंने सम्बोधित किया था, उसके आयोजकों द्वारा सरकार से सिर्फ दो मांगें की गई थीं : भूमि सुधार (पूरक) कानून के तहत प्रविष्टियां सुधारी जाएं तथा राज्य के शेष भागों की तरह यहां भी अधिवासियों को लगान में छूट दी जाए।)

यह स्थिति अकेले पूर्व बनारस राज्य की खासियत नहीं है। जिन दो तहसीलों से मूलत: बनारस जिला गठित हुआ, उनमें वर्ष 1352 फसली में खतौनी के खण्ड-2 में दर्ज व्यक्तियों के पास 1,15,000 एकड़ भूमि थी (देखें : जेड, ए० सी० रिपोर्ट का वक्तव्य-15 भाग-2)। इसमें से 250 रुपये से ज्यादा भूराजस्व चुकाने वाले जमींदारों से ली गई 9,000 एकड़ भूमि को (सीर काश्तकारों के काश्तकारों के कब्जे की 5,000 एकड़ भूमि + बिना रजामंदी के दखलकारों की 4,000 एकड़ भूमि) घटाया जा सकता है क्योंकि इस क्षेत्र के दखलकार सीरदार हो चुके हैं। इस प्रकार 1352 फसली में अधिवासियों की 1,06,000 भूमि दर्ज की गई थी । जिले में अधिवासियों के औसत लगान के बारे में पूछे जाने पर जवाब में जो पत्र अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट ने लिखा था, उसके अनुसार यह क्षेत्र 1359 फसली में घटकर 88,000 एकड़ रह गया।

इन बोलते हुए आंकड़ों को देखते हुए आगे यह टिप्पणी करना मुझे गैर-जरूरी लगना चाहिए कि भूमिधर और सीरदार या अधिवासी में से कौन-सा पक्ष आक्रामक रहा है तथा कानून को अपने हाथ में ले बैठा है और भूमि सुधार (पूरक) कानून जैसी कानूनी व्यवस्था आवश्यक थी या नहीं।

जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार विधेयक मूलत: 12-15 मई 1949 को नैनीताल में हुई मंत्रिमंडल की बैठक में पारित हुआ था, जिसमें अनुच्छेद 237

जैसी कोई धारा नहीं थी। विधेयक ने सभी अधिवासियों को कानून लागू होने की तारीख से पांच वर्ष की अवधि बीत जाने के बाद भूमिधारी का दर्जा हासिल करने का अधिकार दिया था। दरअसल मसौदा कमेटी तो अधिवासी को फौरन उसी समय भूमिधारी का दर्जा हासिल करने का अधिकार देना चाहती थी, लेकिन तत्कालीन मुख्य सचिव ने, जो कमेटी के एक सदस्य थे, कतिपय प्रशासनिक कठिनाईयों का जिक्र किया, यही कारण है कि अधिकार प्राप्ति को कुछ समय के लिए स्थगित रखा गया।

उसके बाद 5 जून को लखनऊ में हुई मंत्रिमंडल की बैठक में एक निर्णय लिया गया था जिसके फलस्वरूप यह धारा उसमें शामिल की गई कि अधिसूचित क्षेत्र में जिस भूमिधर या सीरदार के पास 6.25 एकड़ से कम भूमि हो, वह प्रथमतः परती जमीन को खेती में लाकर और और अगर वैसी भूमि उपलब्ध नहीं हो, तो अपने अधिवासी या अधिवासियों को बेदखल करके उस कमी को पूरा करेगा। मैंने जोरदार प्रतिवाद किया और फिर इस वैकल्पिक सुझाव पर भी विचार हुआ कि पांच वर्ष की अवधि के बाद सिर्फ वे अधिवासी अतिरिक्त भूमि से बेदखल किए जा सकेंगे, जिनके पास 6.25 एकड़ से अधिक जमीन होगी।

यह प्रवर समिति पर छोड़ा गया कि वह दो और प्रतिगामी कदम उठाए। सीमा 6.25 एकड़ से बढ़ाकर 8 एकड़ कर दी गई और जमींदार के बजाए यह अधिवासी था जिसे अपनी व्यवस्था खुद करने और हो सके तो गांव समाज से जमीन प्राप्त करने के लिए छोड़ दिया गया है।

जैसा कि अन्त में हुआ, यह मांग अर्थात शिकमी काश्तकारों को काश्तकारी की सुरक्षा प्रदान किए जाने की मांग 1949 के जून महीने में हंडिया (इलाहाबाद जिला) में हुए प्रांतीय शोषित संघ के सम्मेलन द्वारा की गई एकमात्र आर्थिक और कृषि से सम्बन्धित मांग थी। संघों के गठन की वांछनीयता या अवांछनीयता के बारे में चाहे कुछ भी कहा जाए, खास तौर से आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से कि ये जन्म पर आधारित एक या एक से अधिक जातियों तक सीमित हैं—और इस सवाल पर मुख्यमंत्री मेरे विचारों से भली-भांति परिचित हैं—इससे इंकार नहीं किया जा सकता कि इस मांग को स्वर देते हुए संघ महज हमारे कृषक समाज के कमजोर और गरीब तबके का ही प्रतिनिधित्व कर रहा था।

आर्थिक परिणाम जो सम्बद्ध पक्ष भुगतेंगे, उनकी बात तो अलग रही, अनुच्छेद 237 के तहत अधिसूचना की जबरदस्त राजनीतिक प्रतिक्रिया होगी, अनुच्छेद 234 की गलत व्याख्या के फलस्वरूप बनारस में पिछले अप्रैल और मई में जो आंदोलन हुआ था और जिसमें अधिवासियों के विरुद्ध बेदखली के मुकदमे दायर किए गए थे, उससे कुछ हद तक इसका अन्दाजा लगाया जा सकता है। प्रजा समाजवादियों को मौका मिला और उन्होंने प्रदर्शन का आयोजन और नेतृत्व किया।

कांग्रेस के हित में और देश के हित में हमें यही उचित लगता है कि जो भी कानूनी ढंग से जमीन रखता है, उसे वहां से निकाल बाहर नहीं किया जाए। जमीन चाहे जितनी भी कम हो, भोक्ता को एक ऐसी सुरक्षा भावना देती है जो कोई और नहीं दे सकती। क्योंकि बुरे साल यद्यपि आ सकते हैं, लेकिन अपने स्वामी को यह कभी पूरी तरह हताश नहीं करती। भविष्य में समृद्धि की उम्मीद हमेशा रहती है और ऐसा नहीं कि वह अक्सर फलीभूत न हो। फिर, जिस आदमी के पास आधा एकड़ भी जमीन है, उसे अपने पास कुछ होने का बोध है और इसी लिए जीवन में स्थिरता है। जिस आदमी के पास कुछ है, उसे एक दुनिया उस आदमी से अलग कर देती है जिसके पास कुछ नहीं है। जो आज भूमिहीन हैं या कल वैसा ही बना दिए जाएंगे, वे आसानी से उनके विघटनकारी और समाज विरोधी शक्तियों के साथ मिलने के बहकावे में आ जाएंगे, जिन्हें इसी तरह के मौके की तलाश रहती है।

जैसा कि मैं एक बार मुख्यमंत्री को बता चुका हूं, अधिसूचना कांग्रेस के लिए आत्मघाती सिद्ध होगी, खास तौर से राज्य के पूर्वी हिस्सों में जहां यह उत्तर प्रदेश के अन्य हिस्सों की तुलना में पहले से ही कमजोर है।

नोट कुछ लम्बा हो गया है, लेकिन सम्बन्द्ध मुद्दे के महत्त्व ने इसे औचित्यपूर्ण बना दिया है। न केवल लाखों लोगों का भाग्य इससे प्रभावित होगा, बल्कि ऐसे अन्य लाखों के दृष्टिकोण और आचरण पर भी इसका असर पड़ेगा जो किसी न किसी रूप में इन जड़ से उखड़े परिवारों से जुड़े हो सकते हैं। किसी भी हालत में यह पूर्वी जिलों का राजनीतिक ढांचा काफी हद तक तय कर देगा।

अत: मैं चाहूंगा कि सरकार इस विषय में शीघ्र निर्णय ले। वर्तमान अनिश्चितता से किसी का भला नहीं हो रहा। इसे हटाने के पक्ष में कारण काफी पुरजोर हैं। अगर इसे स्वीकार नहीं किया जाता है तो दूसरे बेहतर विकल्प के तौर पर मैं यह सुझाव पेश करूंगा कि जिन भूमिधरों और सीरदारों के पास कोइ खुद-काश्त भूमि नहीं है या 6.25 एकड़ (10 मानक बीघे) से कम भूमि है, उन्हें अपने सिर्फ ऐसे ही अधिवासियों को उस अतिरिक्त भूमि से बेदखल करने की अनुमति मिले, जिनके पास सभी तरह की जोतों को मिलाकर 3.125 एकड़ (5 मानक बीघे) से अधिक हो, लेकिन शर्त यह रहे कि भूमिधर और सीरदार के पास अगर पहले से ही भूमि हो तो वह कुल मिलाकर 6.25 एकड़ से ज्यादा नहीं हो। इससे आगे जाना मुमकिन नहीं होगा।

—चरण सिंह

7 अगस्त 1953

इस बीच जो आशंकाएं पैदा हुई उन्हें दूर करने के लिए चरण सिंह ने अगले दिसम्बर में मुख्यमंत्री को भेजे एक और नोट में निम्नांकित पैराग्राफ शामिल था :

जहां तक शिकमी काश्तकार का दर्जा ऊंचा करने के प्रस्ताव के औचित्य का सवाल है, जिसका जिक्र उनके 6 दिसम्बर के नोट में हुआ है, उसके बारे में मैं यह निवेदन कर सकता हूं कि उन्हें सिर्फ सीरदार के दर्जे पर प्रोन्नत किए जाने का प्रस्ताव है, बशर्ते वे अपने काश्तकार-प्रमुख के लगान का पांच गुना उसके नाम जमा कर दें। केवल बिचौलियों के सीर के बेदखल काश्तकार ही जमीन की सर्किल दर का पन्द्रह गुना चुका देने पर भूमिधारी के रूप में प्रोन्नत होने के लिए प्रस्तावित हैं, क्योंकि उनके मामले में बिचौलिये और वास्तविक जोतने वाले के बीच कोई काश्तकार-प्रमुख नहीं है। अगर हम इन लोगों को भी सीरदार बना दें तो सरकार स्वामित्व के अधिकारों तथा जोतने के अधिकारों यानी सीर के अधिकारों, दोनों तरह के अधिकारों के लिए बिचौलिये को मुआवजा देने के लिए बाध्य होगी।

—चरण सिंह
17 दिसम्बर 1953

चरण सिंह का 7 अगस्त 1953 का नोट मिलने पर पंडित गोबिन्द बल्लभ पंत ने सुझाव दिया कि वे जिन निष्कर्षों पर पहुंचे हैं, वे पर्याप्त रूप से सही हैं या नहीं, यह जानने के लिए नमूने के तौर पर सर्वेक्षण कराया जाए। चरण सिंह ने उनसे कहा कि सर्वेक्षण कराने की जरूरत नहीं है, क्योंकि अपने विभाग के तथ्यों और आंकड़ों की उनकी जानकारी तथा उत्तर प्रदेश के एक दूसरे से भिन्न क्षेत्रों के देहाती वातावरण की उनकी समझ अदभुत थी। फिर भी पंडित पंत अड़े रहे और सर्वेक्षण का आदेश दे दिया गया।

छुटपुट नमूने की पद्धति से सर्वेक्षण के लिए नौ जिलों की 37 तहसीलों में 74 गांव चुने गए जहां तुलनात्मक दृष्टि से राज्य के अधिवासियों की संख्या बहुत ज्यादा थी। सर्वेक्षण की रिपोर्ट ने चरण सिंह की पूर्वधारणाओं की सच्चाई की पुष्टि की। (देखें : राजस्व सचिव का 16 फरवरी 1954 का नोट, जिसे आगे पुनः प्रस्तुत किया गया है)। राजस्व सचिवालय में जो रिपोर्ट फरवरी 1954 में प्राप्त हुई, उसने दर्शाया कि सभी भूमिधरों और सीरदारों में से केवल 16.8 प्रतिशत ने जमीनें पट्टे पर लगाई थीं, इनमें से 11.85 प्रतिशत यानी कुल के केवल 2 प्रतिशत ने अपनी सारी जमीनें पट्टे पर लगाई थीं तथा अन्य व्यवसाय अपना लिए थे। मर्जी पर टिके इन किसानों के 82.4 प्रतिशत का अपनी जमीन पर पांच वर्ष से अधिक समय से कब्जा था तथा लगभग 88 प्रतिशत के पास गुजारे के लिए खेती के अलावा कोई दूसरा साधन नहीं था।

राजस्व मंत्री

राजस्व मंत्री के आदेशों के अनुसार फर्रुखाबाद, बनारस (भदोही और चकिया तहसीलों को छोड़कर) जौनपुर, बलिया, बस्ती, आजमगढ़ हरदोई, फैजाबाद और गोंडा जिलों में शिकमी काश्तकारी के प्रतिदर्श सर्वेक्षण किया गया। इन जिलों को इसलिए चुना गया कि यहां शिकमी बन्दोबस्ती बहुत व्यापक रूप से हुई लगती है। इस क्षेत्र में कुल 31, 301 गांव हैं जिनमें छुटपुट तौर पर 74 गांव चुने गए और वहां जांच-पड़ताल की गई।

जे० ए० सी० रिपोर्ट, खण्ड-2 के अनुसार इन जिलों में 792 .0 हजार एकड़ का क्षेत्र शिकमी काश्तकारों और सीरदारों के कब्जे में था। प्रतिदर्शी परिणामों (तालिका-2) के मुताबिक उस वर्ष उनके कब्जे में 810.0 हजार एकड़ का क्षेत्र था। इस प्रकार वास्तविक आंकड़े और प्रतिदर्शी सर्वेक्षण के परिणाम में फर्क सिर्फ 2 प्रतिशत के लगभग है। इससे यह स्पष्ट होता है कि निम्न आधार होने के बावजूद प्रतिदर्श सर्वेक्षण का परिणाम बिलकुल सही है।

निम्नांकित परिणाम महत्त्वपूर्ण हैं :

(क) भूमिधरों और सीरदारों में से केवल 16.8 प्रतिशत ने अपनी कुल जोत या उसके अंश की शिकमी बन्दोबस्ती की है। इस तरह अधिवासियों आदि की समस्या काश्तकार-जोतदारों के 83.2 प्रतिशत के लिए कोई मतलब नहीं रखती।

(ख) अधिवासियों और असामियों में 51.4 प्रतिशत वे लोग हैं, जिनका 10 साल से ज्यादा समय से अपनी भूमि पर दखल है। उन्हें अब अपनी भूमि से वंचित कर देना कष्टकारी होगा। उनके जमींदारों ने उन्हें बेदखल करने के अवसर से तब लाभ नहीं उठाया था जबकि वैसा वे कर करते थे। अन्य 31 प्रतिशत उन लोगों का है, जिनका 10 और 5 साल के बीच दखल रहा। अतः हाल के अधिवासी या आसामी सिर्फ 17.6 प्रतिशत हैं।

(ग) अधिवासियों और असामियों के पास जिन भूमिधरों और सीरदारों की जमीन है, उनमें से 88.15 प्रतिशत के पास दूसरी तरह की जमीन भी है, 2.37 प्रतिशत नौकरी कर रहे हैं और 0.62 प्रतिशत व्यापार में लगे हैं। इस तरह 91.14 प्रतिशत वे लोग हैं जिनके जीवन-निर्वाह के अपने-अपने व्यवसाय हैं। सिर्फ 8.86 प्रतिशत लोगें ऐसे हैं जो श्रमिक आदि हैं और उनके पास कोई जमीन नहीं है। इससे साफ झलकता है कि यह चीख-पुकार कमोवेश बनावटी है कि भूमिपति लोग गहरे संकट में हैं, क्योंकि वे अपने

अधिवासियों को बेदखल नहीं कर सकते, तथा यह बहुत ही छोटे अल्पसंख्यकों की ओर से मचाई जा रही है।

(हस्ताक्षर)
जहुरूल हसन
15 फरवरी, 1954

सचिव का उपर्युक्त नोट प्राप्त होने पर राजस्व मंत्री ने 2 मार्च को इस विषय पर दूसरा नोट इस प्रकार लिखा और फिर आग्रह किया कि बेदखली के बजाए सीरदारी या भूमिधारी के अधिकार सीधे प्राप्त करने का अवसर दिया जाए।

मुख्यमंत्री

पिछले अगस्त में अधिवासियों की समस्या पर जब मैंने एक लम्बा नोट प्रस्तुत किया था तब आपने छुटपुट नमूने की पद्धति से सर्वे किये जाने की इच्छा जाहिर की थी, ताकि हम बेहतर ढंग से निर्णय ले सकें। वैसा ही किया गया है।

इस सर्वेक्षण से इस विचार की पुष्टि हुई है कि जिन जमींदारों और काश्तकार-प्रमुखों ने अपनी जमीनें दूसरों को पट्टे पर नहीं दी थीं, उनमें से ज्यादातर शायद अपनी लगान की आमदनी पर निर्भर नहीं थे, बल्कि किसी न किसी दूसरे व्यवसाय में लगे हुए थे। अधिवासियों वाले भूमिधरों और सीरदारों में 88 प्रतिशत से अधिक खेती में लगे हुए हैं, 3 प्रतिशत व्यापार और नौकरी में हैं, अन्य 3 प्रतिशत हस्तशिल्प, कुटीर उद्योग आदि में लगे हुए कारीगर या कर्म- चारी हैं तथा सिर्फ 6 प्रतिशत मजदूर के रूप में काम कर रहे हैं। गैर-व्यावसायिक धंधों में लगे 12 प्रतिशत लोगों के पास अवश्य ही बहुत थोड़ी जमीन होगी, अन्यथा अपनी सारी जमीन शिकमी काश्तकारों को देकर वे खुद मजदूरी, नौकरी या किसी और व्यवसाय को नहीं अपना लेते।

यह भी साफ है कि इन किसानों-अधिवासियों के पास कोई और ऐसा आधार नहीं कि उसका सहारा लें। इनमें से 88.30 प्रतिशत खेती में लगे हुए हैं। अगर इन्हें बेदखल किया गया तो ये राह के भिखारी बन जायेंगे।

उन सभी बातों का जिक्र करना मेरे लिए जरूरी नहीं है, जिन्हें अपने पिछले नोट में मैं लिख चुका हूं। यही कहना काफी होगा कि मान लें कि तीन व्यक्तियों को अधिवासी के तौर पर खतौनी के भाग-II में दर्ज किया गया, एक साथ मिलकर वे एक परिवार का प्रतिनिधित्व करते हैं, तो फिर 50 लाख आबादी के 10 लाख परिवार इसमें आते हैं। अब अगर एक जिले के अधिवासियों की बेदखली के लिए अनुच्छेद 237 के तहत अधिसूचना

जारी की जाती है, तो उसे समूचे राज्य तक विस्तार देना होगा। एक परिवार के पास औसतन सिर्फ 2.6 एकड़ जमीन है। लेकिन चूंकि एक अधिवासी का औसत खाता एक प्रविष्ट में आधा एकड़ से कम है, अतः महज एक भूमिधर या सीरदार की खातिर हम कई लोगों को, कुछ मामलों में एक दर्जन से ज्यादा लोगों को, बेदखल कर देंगे। यह अधिसूचना, जो लाखों लोगों को भूमिहीन बना डालेगी, हमारी सरकार और हमारे राजनीतिक संगठन कांग्रेस की, जिन्होंने भूदान आंदोलन को अपना समर्थन दिया है, नीतियों के प्रति तीव्र विरोधाभास होगा। एक साल से भी ज्यादा पहले बनाये गये भूमि सुधार (अनुपूरक) कानून द्वारा चालू की गई प्रक्रिया को भी यह पलट देगी।

इन सामूहिक बेदखलियों के राजनीतिक परिणाम की कल्पना सहज ही की जा सकती है। राज्य में काम कर रही जो उपद्रवकारी असामाजिक शक्तियां देहाती क्षेत्र में अपनी पकड़ खोती जा रही हैं, उन्हें इससे अप्रत्याशित बल मिलेगा और मुझे यकीन है कि इस अधिसूचना पर इस कदर शोर-शराबा मचेगा तथा इसके प्रभाव इतने अनर्थकारी होंगे कि जल्द ही इसे वापस लेना पड़ेगा।

इन लाखों अधिवासियों के लिए जमींदारी उन्मूलन का बहुत ही कम या बिल्कुल ही मतलब नहीं रहा है। वे आज भी उन्हीं जमींदारों या काश्तकार प्रमुखों को पुरानी दर से लगान चुका रहे हैं। बेदखली का खतरा आज भी उनके सिर पर मंडरा रहा है। उनका भविष्य अभी भी अनिश्चित है। अनिश्चय की इस भावना को किसी-न-किसी तरह दूर किया जाना चाहिए। बल्कि उसी तरीके से जो कि लाजिमी है। अगर उन्हें बेदखल किया गया तो जमींदारी उन्मूलन उनके लिए अभिशाप होगा तथा स्वराज का उनके लिए कोई अर्थ नहीं रहेगा।

जोतों की चकबंदी के बारे में भी पहले एक निर्णय लिया जा चुका है जो जल्दी ही अमल में आने को है। जमीन के जो छोटे-छोटे टुकड़े अधिवासियों ने सम्भवतः कई लोगों से लिए होंगे,उन्हें एक चक या ब्लाक में मिला दिया जाना है—अगर हम यह निश्चय करते हैं कि अधिवासियों का कब्जा उस पर बना रहे; या फिर उसे भूमिधरों और सीरदारों की जोतों में मिला दिया जाना है—अगर हम अधिवासियों की बेदखली के लिए अधिसूचना जारी करने का निश्चय करते हैं।

जरूरी नहीं कि मैं मुख्यमंत्री का एक और समय नष्ट करूं, लेकिन रिपोर्ट ऑन राजस्थान जागीरदारी एबॉलिशन (जिसे मैंने पिछले अगस्त का नोट लिख चुकने के बाद देखा था) में उनकी खुद की टिप्पणी

को उद्‌धृत करने की छूट लूंगा, जबकि एक प्रस्ताव था कि जमींदारों को खुदकाश्त के लिए अधिक जमीन उपलब्ध करने की दृष्टि से काश्तकारों के कब्जे की जमीनें उनके और जमींदारों के बीच बांट दी जाएं और उस पर फैंसले का दायित्व मुख्यमंत्री पर छोड़ दिया गया था।

यह साफ है कि जागीरदारों को खुदकाश्त उपलब्ध कराने के लिए काश्तकारों की जोतें खंडित करने के गम्भीर आर्थिक परिणाम होंगे। छोटी जोत वाले काश्तकारों के लिए अपनी जमीन का एक हिस्सा खो देने से सम्बन्धित बाध्यता की बात अलग रहे, तो भी यह गलत होगा कि आर्थिक जोतों को अनार्थिक और अनार्थिक जोतों को ज्यादा अनार्थिक बना दिया जाए। जागीरदारों के लिए भी यह सम्भव नहीं होगा कि काश्तकारों से प्राप्त जमीन के छोटे-छोटे टुकड़ों को एक साथ मिला लें। सामाजिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विनियोजन की प्रक्रिया जिससे बहुसंख्यक काश्तकारों की यत्नपूर्वक संजोयी जमीन छिन जाएगी जैसा कि जागीरदार चाहते हैं—वैमनस्य, कटुता और दलीय प्रतिद्वंद्विता को जन्म देगी, जबकि भूमि सुधार की किसी भी योजना का लक्ष्य इनसे बचना ही होना चाहिए।

यह कोई खाली स्लेट नहीं जिस पर हमें लिखना है। कुछ सम्बद्ध राज्यों द्वारा बनाये गये काश्तकारी कानूनों का उल्लेख किया जा चुका है जिनके तहत काश्तकारों को काश्तकारी की निश्चितता प्रदान की गई थी। देश में काश्तकारी कानून की जो मौजूदा स्थिति चल रही है, उसे भी दृष्टिगत रखना जरूरी है। जमींदारी उन्मूलन के फलस्वरूप किसान स्वाभाविक रूप से अपनी और भी बेहतर स्थिति की कल्पना करने लगे हैं। इसके विपरीत अगर अब उन्हें बेदखली की स्थिति का सामना करना पड़े तो यह हर तरह से भूमि सुधार की भावना के विरुद्ध एक प्रतिगामी कदम होगा। यहां आचार्य विनोबा भावे द्वारा शुरूकिए गए भूदान आन्दोलन और उनके नारे 'जमीन उसकी जो जोते' का उल्लेख प्रासंगिक होगा

"इन स्थितियों में मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि जागीरदारों को खुदकाश्त उपलब्ध कराने की खातिर किसानों की अनिवार्य बे दखली नहीं होनी चाहिए…"

मैं सिर्फ यही जोड़ना चाहूंगा कि राजस्थान में दो तर्क या अलग पहचान वाली विशिष्टताएं थीं जिन्हें 'भूमिया' या जागीरदार अपने पक्ष में प्रस्तुत कर सकते थे, लेकिन उत्तर प्रदेश के जमींदार या काश्तकार-प्रमुख वैसा नहीं कर सकते। बहुतेरे जमींदार सेना में या कहीं और कार्यरत थे तथा अपने काश्तकारों के कब्जे की जमीनों पर कुओं, बांधों या तालाबों के निर्माण द्वारा अपनी बचतें विकास कार्यों में लगा देते थे। 12 गांवों के एक सर्वेक्षण से यह

स्पष्ट हुआ कि काश्तकारों की जोतों पर पाए गए 13,000 कुओं में तकरीबन 11,000 कुएं जागीरदारों द्वारा या उनकी सहायता से निर्मित हुए थे।

यहां अधिवासियों का मामला काफी मजबूत है।

(हस्ताक्षर)
चरण सिंह
2 मार्च, 1954

मुख्यमंत्री अंततः राजस्व मंत्री से सहमत हुए और आदेश दिया कि इस विषय को मंत्रिमंडल के सामने रखा जा सकता है (15 मार्च 1954 का निम्नांकित नोट देखें)।

टिप्पणियां और आदेश

राजस्व मंत्री को उनके सूझबूझ भरे नोट के लिए धन्यवाद। मैंने कृषि विभाग के प्रमुख सांख्यिकीविद की रिपोर्ट भी दिलचस्पी के साथ पढ़ ली है। संसाधनों की अपर्याप्तता के बारे में उन्हीं नौ जिलों के 0.24 प्रतिशत मौजूदा गांवों तक सीमित रहना था, जिनमें से ज्यादातर पूर्वी क्षेत्र में हैं। मैं राजस्व मंत्री द्वारा की गई टिप्पणियों की प्रभाविकता की भरपूर सराहना करता हूं। नमूना सर्वेक्षण ने कम-से-कम हमें कुछ सामग्री दी है और उसके परिणामों को नजरअंदाज या सरकारी तौर पर खारिज नहीं किया जा सकता। शायद वे मौजूदा परिस्थिति का अनुमानिक प्रतिनिधित्व करते हैं। लगता है कि छः भूमिधरों और सीरदारों में सिर्फ एक ने अपनी जोत का कुल या एक हिस्सा पट्टे पर उठाया है। असामियों और अधिवासियों के कब्जे की भूमि का औसत रकबा प्रति व्यक्ति आधा एकड़ से कुछ कम ही होगा। फिर भी उनमें से से 88 प्रतिशत कृषि पर निर्भर हैं। इसका स्पष्टीकरण पाना आसान नहीं है। बाकी के लिए व्यवसायों का ढांचा वस्तुगत तौर पर भूमिधरों और सीरदारों से भिन्न नहीं प्रतीत होता। वे अस्थायी श्रमिक हैं, कृषि और गैर-कृषि दोनों ही क्षेत्रों में उनका पूरा वजूद अधिवासियों से बहुत कम नहीं है। ऐसा लगता है कि लगभग 17.6 प्रतिशत अधिवासियों और असामियों के खाते 5 साल से भी कम अवधि के हैं। यह विषय महत्त्वपूर्ण है और इसे मंत्रिमंडल के समक्ष रखा जा सकता है।

(हस्ताक्षर)
जी. बी. पंत
15 मार्च 1954

बाबू सम्पूर्णानन्द, ठाकुर हुकुम सिंह और ठाकुर हरगोविन्द सिंह फिर भी अधिवासियों को स्थायी अधिकार प्रदान किये जाने के बिल्कुल खिलाफ थे।

इसलिए उन्होंने जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार के उन प्रासंगिक प्रावधानों का, जिन्हें चरण सिंह ने सम्भवत: मार्च 1954 में मंत्रिमंडल के सामने विचारार्थ रखा था, तीव्र विरोध किया। फलत: निर्णय को स्थगित कर दिया गया। यह सवाल उनके (चरण सिंह के) द्वारा दूसरी और फिर तीसरी बार भी उठाया गया। लेकिन ऐसा हुआ कि बाबू सम्पूर्णानन्द दोनों अवसरों पर अनुपस्थित रहे और निर्णय बार-बार स्थगित होता रहा। दूसरी तरफ एक और भी कारण से, जैसे जब तक अधिवासियों के अधिकारों पर निर्णय नहीं ले लिया जाता, तब तक जोतों की चकबंदी से सम्बन्धित कानून को अंतिम रूप नहीं दिया जा सकता। वह कानून जिसे कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए राजस्व मंत्री बहुत आवश्यक समझते थे, चरण सिंह इस बात के लिए चिंतित थे कि इस उपाय को विधि-संग्रह में स्थान मिल जाए।

अत: चरण सिंह विक्षुब्ध हो जून 1954 के चौथे सप्ताह में पंतजी के पास गए और राजस्व विभाग छोड़ने की पेशकश कर दी। मुख्यमंत्री ने तुरन्त उन तीनों मंत्रियों को बुला भेजा जिन्होंने आपत्ति जताई थी। मगर उनमें से दो ही उपलब्ध थे। मुख्यमंत्री ने उन्हें बताया कि खूब सोच-विचार कर लेने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि अपने विधेयक या प्रस्ताव के जरिए चरण सिंह जो उपलब्धि चाहते थे, वह जनहित में है। इस पर दोनों महानुभाव झटपट सहमत हो गए। उपाय को अंतिम रूप देने में चूंकि देरी हो चुकी थी और विधान सभा पहले ही स्थगित हो गई थी, इसलिए अब मंत्रिमंडल की सहमति प्राप्त की गई और एक अध्यादेश जारी करने का निर्णय लिया गया। अध्यादेश में प्रावधान था कि काश्तकार प्रमुख को चुकाए जाने वाले लगान का पांच गुना चुकाने पर सभी शिकमी काश्तकार सीरदार के दर्जे पर और सर्किल-दर का पन्द्रह गुना जमींदार को चुकाने पर सीर जमीनों के सभी काश्तकार यानी सीरदार भूमिधर के दर्जे पर प्रोन्नत समझे जायेंगे।

यह जानकर कि अधिवासियों के सवाल पर सरकार एक अध्यादेश जारी करने जा रही है, अलगू राय शास्त्री ने, जो उस समय प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष थे, 25 जून 1954 को पंडित गोविन्द बल्लभ पंत को पत्र लिखा कि उन्हें सुनवाई का मौका दिया जाए। अत: श्री अलगू राय शास्त्री से बातचीत होने तक के लिए अध्यादेश को जारी करने से रोक दिया गया। आखिर काफी मनाने-बुझाने के बाद श्री शास्त्री ने जब अध्यादेश पर अपनी सहमति दे दी तब कहीं जाकर वह लागू हो पाया। श्री शास्त्री की आपत्ति के पीछे वजह साफ थी : पूर्वी जिलों के अन्य प्रमुख कांग्रेसियों की तरह वे भी पिछड़ी और अनुसूचित जातियों के सदस्यों को, जिनका प्रतिशत अधिवासियों में बहुत ज्यादा है, कोई अधिकार दिए जाने के खिलाफ थे।

हमारे समाज के कृषिमूलक ढांचे में दलितों के अधिकारों की रक्षा की जरूरत को लेकर चरण सिंह का जो नजरिया था, उसे कांग्रेस के शीर्षस्थ नेताओं द्वारा स्वीकृति मिली। प्रधान- मंत्री के रूप में श्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा मुख्यमंत्रियों को सम्बोधित 5 अगस्त 1954 के 'पाक्षिक नोट' से लिए गए निम्नांकित उद्धरणों से यह बात साफ हो जाएगी।

20. यहां भूमि समस्या है और हमने जमींदारी और जागीरदारी प्रथा के खात्मे के लिए बहुत कुछ करने का श्रेय अपने ऊपर लिया है, हालांकि भारत के कई हिस्सों में कुछ हद तक वह आज भी मौजूद है। लेकिन इस भूमि सुधार की प्रगति को लेकर हमारे मन में सन्देह कुलबुलाता है। निस्सन्देह हमने अच्छा किया है और एक खास तरह का बिचौलिया रुखसत हो चुका है। लेकिन कई बिचौलिये आज भी मौजूद हैं। हमारी यह दीर्घ घोषित नीति रही है कि सभी बिचौलिये खत्म हों और जो किसान खुद जमीन जोतता है, वह अपने भूखण्ड का मालिक हो जाए। उसमें हम अभी तक कामयाब नहीं हुए हैं और हम पाते हैं कि जो कानून हमने बनाए हैं, उनमें व्यापक रूप से बच निकलने के कई छेद रह गए हैं। दरअसल कानून खुद उन बातों की इजाजत दे डालते हैं जिससे हमने बचना चाहा था। खास तौर से मुझे गहरा धक्का लगता है जब देखता हूं कि बहुत से किसान आज भी बेदखल हो रहे हैं। जमीन को खुदकाश्त घोषित कर या निजी खेती के लिए आरक्षित कर यकीनन ऐसा बार-बार किया जाता है। इस सबका कुल मिलाकर नतीजा यही है कि किसान बेदखल हो रहे हैं। यह हकीकत है कि आज भी लोगों के पास सैंकड़ों एकड़, कभी-कभी हजार या उससे भी ज्यादा एकड़ जमीन है। नतीजा वह नहीं निकला जिसकी हमें अपेक्षा थी।

21. जो काश्तकार बेदखल किए गए हैं, वे अपनी दुःखगाथा लेकर उनके पास आते हैं। वह क्या कहें उनसे ? उनके पास कौन सा जवाब है उन्हें देने के लिए ? दूसरी दिशाओं में उनकी सारी उपलब्धियां, भविष्य के लिए उनकी सारी योजनाएं उनके लिए कोई मतलब नहीं रखतीं, अगर उन्हें उस जमीन से अलग कर दिया जाए जिसे वे वर्षों से जोतते रहे हैं ?

हमारे नए भूमि-सुधारों ने उनकी हालत बेहतर बनाने की जगह उसे वस्तुतः और भी बदतर बनाया है। निश्चय ही यह ऐसी बात है जिसे वे जानबूझकर स्वीकार नहीं कर सकते।

22. भूमि सुधारों की पूरी नीति असली खेतिहर का बोझ हटाने के अलावा किसानों में जमीन की आमदनी का समुचित वितरण करने और इस तरह उन्हें ज्यादा क्रय-शक्ति प्रदान करने के लिए थी। इस तरीके से आंतरिक बाजार विस्तृत होता और देश की उत्पादन शक्तियों का विकास होता। हम

तब तक अपना उत्पादन नहीं बढ़ा सकते, जब तक अपनी खपत नहीं बढ़ा लेते। हम तब तक अपनी खपत नहीं बढ़ा सकते, जब तक कि बड़ी तादाद में लोगों के पास खरीदने की क्षमता न हो। उन्हें याद है फोर्ड फाउण्डेशन के उन विशेषज्ञों के साथ हुई बातचीत, जो यहां कुटीर और लघु उद्योगों के बारे में हमें सलाह देने के लिए आए थे। इन विशेषज्ञों में से कुछ ने उनसे कहा था कि ऐसे विस्तृत बाजार के भविष्य की कल्पना कितनी उत्तेजक है, जो भारत ने दिया है और दे सकता है। एक बार वृहत्तर क्रय शक्ति का चक्का चला कि वृहत्तर खपत और वृहत्तर उत्पादन चलता ही जाता है, उसकी कोई सीमा नहीं होती। निश्चित रूप से यह सिर्फ जमीन पर नहीं बल्कि उद्योग पर और भी ज्यादा लागू होता है। खासतौर से यह छोटे उद्योगों पर लागू होता है, जिन्हें बहुत सी ऐसी वस्तुओं का उत्पादन करना है, जिनकी जरूरत हमारे गांवों को रहती है।

अधिवासियों से सम्बन्धित जिस अध्यादेश का जिक्र ऊपर किया जा चुका है उसे नियमित अधिनियम का रूप दिया जाना था। इसलिए एक विधेयक में उसे समाहित किया गया था, जिसमें वे कमियां दूर करने वाले प्रावधान थे, जो जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून लागू होने के बाद के दो वर्षों में सामने आई थीं। विधान सभा में उसे पेश किया जा चुका था और पूर्ववर्ती मई महीने में प्रवर समिति को सौंपा गया था। राजस्व मंत्री चरण सिंह ने प्रवर समिति द्वारा अनुशंसित विधेयक विधान सभा में विचारार्थ पेश करते हुए 13 सितम्बर 1954 को अन्य बातों के अलावा यह कहा :

मौजूदा कानून के तहत अधिवासी 1952 में कानून लागू होने के बाद पांच साल बीत जाने पर ही भूमिधारी के अधिकार प्राप्त कर सकते थे। सरकार ने राज्य में उन क्षेत्रों को अधिसूचित करने के अपने अधिकार को भी सुरक्षित रखा जहां जमीन का जोतदार अपने अधिवासियों को बेदखल कर सकता था, ताकि उसकी जोत 8 एकड़ की हो जाए। इस बाद वाले प्रावधान को समाप्त किया जा रहा है तथा सीरदारी का दर्जा सभी अधिवासियों को दिया जा रहा है, इस तथ्य को ध्यान में रखे बिना कि उसके जमींदार भूमिधर हैं या सीरदार; तथा इन अधिकारों की प्राप्ति के लिए बिना कुछ भुगतान किए। यह एक बहुत ही क्रांतिकारी प्रस्ताव है। भविष्य में यहां सिर्फ भूमिधर और सीरदार होंगे। अवश्य ही वे असामी हमेशा रहेंगे ही, जो विकलांग भूमिधरों और सीरदारों की जमीन जोत रहे होंगे और उनकी संख्या बहुत कम होगी। सदन को गर्व होना चाहिए कि वह इस प्रावधान को कानूनी रूप दे रहा है। ऐसा करके इसने देश में कृषि सुधार के क्षेत्र में अग्रणी होने के अपने दावे का औचित्य सिद्ध किया है।

यह सुनिश्चित करने के लिए कि अधिवासियों को स्थायी अधिकार देने के सरकार के इरादे के मुताबिक ही काम हो रहा है और तथाकथित 'स्वेच्छा से समर्पण' जैसी कोई बात कही नहीं, राजस्व मंत्री ने भूमि सुधार आयुक्त से राज्य के सभी जिला मजिस्ट्रेटों और कलक्टरों के नाम एक परिपत्र जारी करने के लिए कहा, तो आयुक्त ने राजस्व मंत्री के साथ विस्तृत बातचीत के बाद 18 अक्टूबर 1955 को वैसा ही किया। परिपत्र से उद्धरण नीचे दिए जा रहे हैं :

गोपनीय

भूमि सुधार आयुक्त,
उत्तर प्रदेश, सेक्शन-2
लखनऊ
की ओर से
उत्तर प्रदेश के सभी जिला अधिकारियों के नाम
(टिहरी गढ़वाल, गढ़वाल और अल्मोड़ा को छोड़कर)
लखनऊ, दिनांक, 18 अक्टूबर 1955
संख्या-144
महोदय,

समय-समय पर जिलों से प्राप्त रिपोर्टों से उन पूर्व अधिवासियों से भू-राजस्व की वसूली के मामले में आ रही कुछ कठिनाइयों का पता चलता है, जो उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून, 1950 के अनुच्छेद 240-ए के तहत 30 अक्टूबर 1954 को जारी अधिसूचना को देखते हुए अब सीरदार हो गए हैं। यह भी समझ लिया जाना चाहिए कि महज भू-राजस्व की वसूली से भी ज्यादा कुछ दांव पर लगा हुआ है। हो सकता है पूर्व जोतदारों और पूर्व अधिवासियों के बीच मिलीभगत हो या पूर्व-जोतदारों का दावा मान लेने के लिए वे मजबूर हों। इस तरह यह साफ संकेत मिलता है कि भू-राजस्व की वसूली के अलावा इस मिलीभगत को मात देना और समाज के उस कमजोर वर्ग को सुरक्षा प्रदान करना भी हमारा कर्त्तव्य है, जिसे बहुमूल्य अधिकार दिए जा चुके हैं।

शुरुआत ऐसे हो कि पहले फसली साल 1362 की खतौनी के अनुसार पूर्व-अधिवासियों से सम्बन्धित जमाबंदी की जांच की जाए तथा उन सभी जमाबंदी खातों को साफ-साफ चिह्नित कर लिया जाए, जिनमें दर्ज अधिवासी विधवा या नाबालिग हों।

अगला कदम जांची हुई जमाबंदियों को इस स्पष्ट निर्देश के साथ वसूली करने वाले अमीन के हाथ में देना होगा कि वह उन खातों से वसूली

का प्रयास नहीं करेगा जिन्हें शारीरिक तौर पर अक्षम जोतदारों के रूप में चिह्नित किया जा चुका है। बाकी खातों के मामले में अमीन उन पूर्व-अधिवासियों से सामान्य तौर पर वसूली करेगा जो सीरदार के रूप में अपने मौजूदा दर्जे से इंकार नहीं करता और भुगतान के अपने दायित्व से नहीं मुकरता —ऐसा करते हुए वह ऐसा दबाव (उचित कानून के तहत) भी डाल सकता है जो जरूरी और वाजिब हो। उन जमाबंदी खातों के मामले में, जिनमें दर्ज अधिवासी खुद सीरदार होने का दावा नहीं कबूलता और फलस्वरूप भू-राजस्व चुकाने से इंकार करता है, अमीन कोई वसूली तो नहीं करेगा लेकिन सिर्फ यह टिप्पणी दर्ज करेगा कि वह व्यक्ति जोत से सम्बन्धित होने से इंकार करता है।

संक्षेप में स्थिति यह होगी कि जब तक पैरा-6 में की गई व्याख्या के अनुसार सक्षम न्यायालय द्वारा आदेश जारी नहीं किए जाते, तब तक उन खातों से जिनमें भूमिधारी स्पष्टत शारीरिक दृष्टि से अक्षम चिह्नित है, तथा उन दर्ज पूर्व-अधिवासियों से जो सीरदार के रूप में अपना दर्जा नहीं कबूलते, भू-राजस्व की वसूली नहीं की जाएगी।

वसूली के लिए नायब तहसीलदारों का अगला कदम होगा कि वे उन गांवों का दौरा करें जहां ऐसे खाते हैं जिनमें अमीन ने भू-राजस्व चुकाने के दायित्व को नहीं कबूलने की बात दर्ज की है। नायब तहसीलदार ऐसे खाताधारियों से कोई वसूली नहीं करेगा लेकिन हर मामले की तहकीकात करेगा। वह ऐसे काश्तकारों के बयान दर्ज करेगा, यह निश्चित करेगा कि किस आधार पर दायित्व से इंकार किया जा रहा है तथा गांव में उपलब्ध साक्ष्यों से यह पता लगाएगा कि 30 अक्टूबर 1954 को किसका कब्जा था और जांच की तारीख को किसके कब्जे में है। बेहतर साक्ष्य दे सकने वाले लोग हैं—लेखपाल, भूमि प्रबंधन समिति के अध्यक्ष और सदस्य तथा आस-पास के खेतों के किसान। वसूली का नायब तहसीलदार तब अपनी जांच रिपोर्ट तैयार करेगा और हर मामले के साक्ष्यों के ज्ञापन के साथ उसे तहसीलदार के जरिए अनुमंडल अधिकारी को देगा।

मैं संक्षेप में उपरोक्त पैरा में उल्लेखित नायब तहसीलदार की जांच रिपोर्ट के महत्त्व पर रोशनी डालना चाहता हूं। यह एक खुला रहस्य है कि कुछ 'पूर्व-भूमिधारी' उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून के अध्याय 9-ए द्वारा लाए गए सुधारों को विफल करने की कोशिश में लगे रहे हैं। उनमें से कुछ ने सुधार लागू होने से पहले ही अधिवासियों को अपनी जोतें सौंप देने के लिए बाध्य किया है। कुछ ने 'भूल सुधार अभियान' का लाभ उठाते हुए बहुत से मामलों में यह प्रयास किया और शायद आज भी

कर रहे हैं कि दर्ज अधिवासी जोत पर अपना कब्जा होने की बात से मुकर जाएं। सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियां ऐसी हैं कि अपने नए अधिकारों से वंचित किए जाने के प्रयासों का विरोध करना पूर्व-अधिवासियों के लिए कठिन है। राजस्व प्रशासन का दायित्व है कि जहां तक हो सके वह ऐसे प्रयासों को प्रभावहीन कर दे। जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून के अनुच्छेद 240-ए के तहत अधिसूचना जारी होने की तारीख महत्त्वपूर्ण है और प्रासंगिक तथ्य यह है कि दर्ज अधिवासी का कब्जा उस तारीख को था या नहीं। अगर उस तारीख को कब्जा था लेकिन मिलीभगत या दबाव के चलते बाद में उसने कब्जा छोड़ दिया था या अब उस पर दावा नहीं करता, तो माना जाएगा कि उसने अपनी जोत समर्पित कर दी, जो फिर गांव समाज की सम्पत्ति हो जाएगी। फलस्वरूप अनधिकृत कब्जे की समाप्ति के लिए जमींदारी उन्मूलन कानून के नियम 115-सी से 115-एच तक सक्रिय हो उठेंगे। ऐसे मामलों में आप वसूली के नायब तहसीलदार की रिपोर्ट के आधार पर आगे बढ़ेंगे, गांव समाज के अमूल्य अधिकारों के हनन को रोकने के लिए उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून के अनुच्छेद 240-जी के तहत आपत्ति का मामला दायर करेंगे।

मैं आपसे अनुरोध करूंगा कि आप व्यक्तिगत रूप से राजस्व विभाग के नायब तहसीलदार स्तर तक के कर्मचारियों को विस्तार से इस परिपत्र के प्रावधानों के बारे में बताएंगे, जो फिर अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को यह सब बताएंगे। इस परिपत्र की अतिरिक्त प्रतियां संलग्न हैं जिन्हें नायब तहसीलदार के स्तर तक वितरित किया जाना है तथा इस सबूत के तौर पर उन सबके हस्ताक्षर ले लेने हैं कि उन्होंने इसे देख और समझ लिया है।

आपका विश्वस्त,
(ह) जे. निगम
आई. सी. एस.

इस आधिकारिक परिपत्र को बल प्रदान करने के लिए चरण सिंह ने प्रदेश कांग्रेस कमेटी को इस बात के लिए राजी किया कि वह जिला कांग्रेस कमेटी को यह सुनिश्चित करने की सलाह दे कि जिन गरीब किसानों को अपनी जोतों पर स्थाई अधिकार मिले हुए हैं, उन पर 'स्वेच्छिक सुपुर्दगी' के लिए दबाव नहीं डाला जाए। फिर भी इस सलाह पर सचमुच अमल किया गया या नहीं, यह केवल अनुमान लगाने की बात है। यह सब सम्बद्ध जिले के कांग्रेसी नेताओं की अवधारणा पर निर्भर करता है।

फिर जो लोग गरीब अधिवासियों के जीवन निर्वाह के साधनों को हथियाना चाहते थे, उन्हें रोकने के लिए उन्होंने (चरण सिंह ने) गाजीपुर और जौनपुर

जिले के देहाती क्षेत्रों में आयोजित दो विशाल सभाओं में घोषणा की कि अगर भूतपूर्व शोषकों ने अधिवासियों को बेदखल करने की कोशिश की, तो वे अपने अधिकारों के लिए लाठी लेकर खड़े हो जाएंगे और उनके पांव अपने खेत या खेतों पर होंगे। इस घोषणा ने गरीब किसानों का हौसला बढ़ाया।

जैसा कि पिछले पृष्ठों में संकेत किया जा चुका है, राज्य के ज्यादातर मध्यवर्ती और पूर्वी भागों के देहाती क्षेत्रों में भूतपूर्व जमींदार और काश्तकार, जिनका वहां की सामाजिक और आर्थिक सत्ता पर लगभग पूरा एकाधिकार था, समाज के उन कमजोर और गरीब तबकों को अपनी छोटी-छोटी जोतें सौंप देने के लिए डरा-धमका रहे थे, जिन्हें राज्य सरकार ने कब्जे या स्वामित्व के स्थायी अधिकार दे दिए थे। इस मामले में यानी 'स्वैच्छिक सुपुर्दगी' के मामले में डॉ० सम्पूर्णानन्द (जो पंत जी के 31 दिसम्बर 1954 को दिल्ली चले जाने के बाद से मुख्यमंत्री थे) का अपना जिला वाराणसी सबसे ज्यादा कुख्यात था। मुख्यमंत्री को सम्बोधित राजस्व मंत्री के दिनांक 22 अक्टूबर 1955 के निम्नांकित नोट से यह बात स्पष्ट हो जाएगी।

मुख्यमंत्री

> इन आवेदन पत्रों पर नजर डालना चाहेंगे। इनमें से दो कम्युनिस्ट समर्थित किसान सभा से आए हैं, इसलिए अति रंजित हो सकते हैं। लेकिन अपने कर्त्तव्य से चूक जाऊंगा अगर मैं अपनी इस भावना को अभिव्यक्ति नहीं दूं कि भूतपूर्व शिकमी काश्तकारों को, खासतौर से बनारस जिले के उस भाग के जो कभी बनारस राज्य था, उनके कानूनी अधिकार दिला पाने में हम कामयाब नहीं हुए हैं। मुख्यमंत्री के पूर्ववर्ती को दिए गए पिछले नवम्बर के अपने नोट में मैंने यह दर्शाया था कि शिकमी काश्तकारों के कब्जे का क्षेत्र, जो फसली साल 1355 (1 जुलाई 1947—30 जून 1948) में 1,03,000 एकड़ था, वह फसली साल 1359 (1 जुलाई 1951—30 जून 1952) में घटकर 50,000 एकड़ पर आ गया। मुख्यमंत्री भी यह नोट देख चुके थे। इस क्षेत्र के शिकमी काश्तकारों की जोतों पर उन्हें 30 अक्टूबर 1954 को सीरदार के रूप में स्थायी अधिकार दे दिए गए थे। उस तारीख से अब तक गरीब काश्तकारों से 48,000 से ज्यादा सुपुर्दगियां प्राप्त की गई हैं; मेरा दिमाग इस मामले में बिल्कुल साफ है कि इन सुपुर्दगियों में से ज्यादातर जोर-जबरदस्ती से हासिल की गईं। जमीन पर कानून द्वारा प्रदत्त अधिकार का दावा सामान्यत: कोई नहीं छोड़ता। मेरे विचार का सहभागी वह कलक्टर है जो दलितों की सहायता के लिए बहुत कुछ कर रहा है। मैं यह भी बताना चाहूंगा कि राज्य का सिर्फ यही एक टुकड़ा है, जहां इतने बड़े

पैमाने पर शिकमी काश्तकार अपने अधिकारों से वंचित किए गए हैं या किए जा रहे हैं।

इन हालात के लिए एक से ज्यादा कारण जिम्मेदार हैं। एस०डी०ओ० और कुछ पुलिस अधिकारियों के रवैये निश्चित रूप से इसके दो कारण हैं। राजस्व उपमंत्री भी, जो हाल ही में उस क्षेत्र का दौरा कर चुके हैं, समस्या के प्रति एस०डी०ओ० के रवैये के बारे में ऐसी ही धारणा रखते हैं। मुख्यमंत्री को काश्तकारों की बेदखली की समस्या के बारे में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी और प्रधानमंत्री के दृष्टिकोण का पता है, जिसे उन्होंने परिपत्र में अभिव्यक्ति दी है।

गलतफहमी नहीं हो, इसलिए मैंने उस क्षेत्र में जाने या वहां सभा में भाषण करने या दूसरे कदम सुझाने से अपने आपको रोके रखा है। मुख्यमंत्री जैसा उचित समझें, करें।

(हस्ताक्षर)
चरण सिंह
22 अक्टूबर 1955

तीन साल बाद पं० जवाहरलाल नेहरू, इस तथ्य को भूलते हुए कि उनके और उनके मंत्रिमंडल द्वारा अनुमोदित पहली और दूसरी दोनों ही पंचवर्षीय योजनाओं में जमींदारों के पवित्र 'पुनर्ग्रहण के अधिकार' के तहत काश्तकारों की बेदखली का प्रावधान था, मुख्यमंत्री के नाम नीचे उद्धृत 5 सितम्बर 1957 के अपने पत्र में पुन: 'काश्तकारों की बेदखली पर रोक की सार्थकता और महत्ता' पर लौट आते हैं। जैसा कि अगले पृष्ठो में जोतदारों के मुकाबले खेत मजदूरों के बढ़ते अनुपात से सम्बन्धित आंकड़े बताएंगे, बेदखलियां पण्डित नेहरू के अपने दौर में और यहां तक कि सत्तर वाले दशक के दौरान भी बेरोकटोक जारी रहीं।

गोपनीय

संख्या 1713-पी. एम. ए, 57
नई दिल्ली
5 सितम्बर 1957

प्रिय मुख्यमंत्री,

हाल ही में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में भूमि समस्या पर लम्बी बहसें चली थीं। आप में से बहुतों ने उनमें भाग लिया ही होगा। मैं फिलहाल इस समस्या के अनेक पहलुओं का जिक्र नहीं कर रहा हूं। हालांकि वे महत्त्वपूर्ण हैं। लेकिन मुझे लगता है कि जो सबसे ज्यादा अर्थपूर्ण और महत्त्वपूर्ण है, वह है काश्तकारों की बेदखली को रोकना। समय-समय पर कई राज्यों में बेदखलियां जारी रहने की और कभी-कभी बड़े पैमाने पर ऐसा

होने की सूचनाएं आती रहती हैं। दरअसल जो उपाय सुझाए गए होते हैं, वे ही इस तरह की बेदखली के सबब बन जाते हैं।

मैं सोचता हूं कि हर राज्य को इस स्थिति से तत्काल और प्रभावी ढंग से निपटना ही चाहिए। अगर कानून में खामी है तो उसे दुरुस्त करने के लिए अभी ही कुछ किया जाना चाहिए। लेकिन कानून के अलावा यह प्रशासनिक ढांचा है जो मामले को प्रभावी ढंग से निपटा सकता है, अगर वह ऐसा ठान ले। मेरा ख्याल है कि जिला मजिस्ट्रेट और दूसरे लोग इस मामले में लापरवाह हैं। मुझे यकीन है कि वे काफी कुछ कर सकते हैं, अगर उन्हें बेदखली पर रोक के अनिवार्य महत्त्व के बारे में बताया जाए।

कांग्रेस अध्यक्ष ने खास तौर से इस तरफ मेरा ध्यान खींचा है। इस विषय को मैं उन्हीं की तरह काफी गम्भीरता से लेता हूं।

सद्भावनाओं सहित

(हस्ताक्षर)

जवाहरलाल नेहरू

डॉ० सम्पूर्णानन्द
मुख्यमंत्री, उत्तर प्रदेश
लखनऊ

मुख्यमंत्री ने उपर्युक्त पत्र 10 सितम्बर को राजस्व मंत्री के पास अनुप्रेषित किया, यह जानकारी मांगते हुए कि पिछले सात वर्षों के दौरान उत्तर प्रदेश में बेदखलियां हुई हैं या नहीं, और अगर हुई हैं तो क्या आंकड़े मिलना सम्भव है, खासतौर से सरकार द्वारा प्रकाशित। चरण सिंह ने उत्तर इस प्रकार दिया :

मुख्यमंत्री

हमारे राज्य में उल्लेख योग्य या गिनाने लायक बेदखलियां सिर्फ बनारस जिले के भदोही में हुई हैं। जैसा कि मुख्यमंत्री को याद होगा, मैंने इसकी सूचना 1954 के आखिरी चरण में उनके पूर्ववर्ती को तथा 1955 के शुरू में कभी खुद मुख्यमंत्री को भी दी थी। लेकिन अपने नियंत्रण से बाहर के कुछ तत्त्वों के चलते मैं खामोश रह गया था। अगर मुख्यमंत्री चाहते हैं तो आंकड़े जुटाए जा सकते हैं।

हमारे कानून काफी सक्षम रहे हैं। हमने शिकमी काश्तकारों, घरेलू फार्मों के बेदखली काश्तकारों सहित सभी काश्तकारों को सुरक्षा दी है और बिना-तस्फिया-लागू के रूप में दाखिला लेने वाले तक को कानून की निगाह में अतिक्रमणकारी ठहराया है। योजना मंत्री श्री गुलजारी लाल ने अपने भाषण

और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्यों के बीच प्रचारित नोट में भी हमारे उपायों के कारगर ढंग से लागू किए जाने का उल्लेख किया। अपने नोट में उन्होंने उत्तर प्रदेश को प्रथम श्रेणी में रखा।

प्रधानमंत्री, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी या योजना आयोग द्वारा काश्तकारों की जिस बेदखली का जिक्र अक्सर किया जाता है वह उत्तर प्रदेश की अपेक्षा कुछ अन्य राज्यों में हुई है। मैं मुख्यमंत्री का ध्यान श्री गुलजारी लाल नन्दा के नोट के बगल वाले हिस्से की तरफ ले जाना चाहूंगा। दूसरे राज्यों में काश्तकार ज्यादातर जमींदारों और काश्तकार-प्रमुखों या प्रशासन की ढिलाई के चलते बेदखल हुए हैं। हमने अपने राज्य में पुनर्ग्रहण के अधिकार को मान्यता नहीं दी है और पूरे प्रशासन तंत्र को पता है कि अपनी नीतियो को अमली रूप देने और भूमि सुधारों के अपने इरादों को वास्तविकता प्रदान करने के मामले में सरकार कितनी सजग है।

(हस्ताक्षर)
चरण सिंह
10 सितम्बर 1957

डॉ० सम्पूर्णानन्द ने प्रधानमंत्री को उत्तर इस प्रकार दिया :
डी. ओ. नं. ए/534/57

लखनऊ
1/4 अक्टूबर 1957

प्रिय प्रधानमंत्री,

कुछ समय पहले आपने उन शिकायतों की ओर ध्यान आर्कषित करते हुए एक पत्र मुझे भेजा था, जो काश्तकारों की बेदखली के बारे में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की पिछली बैठक में और अन्यत्र भी चर्चा का विषय बनी थीं। आपको याद होगा कि राष्ट्रीय विकास परिषद की स्थायी समिति की पिछली बैठक में भी यह सवाल उठा था। जैसा कि वहां की बहसों से स्पष्ट होगा, उत्तर प्रदेश में काश्तकारों की बेदखली का सवाल ही नहीं उठता; क्योंकि हमारा काश्तकारी कानून किसी भी स्तर पर पूर्व-बिचौलियों द्वारा पुनर्ग्रहण का कोई प्रावधान नहीं रखता। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की पिछली बैठक में प्रचारित भूमि सुधारों से सम्बन्धित नोट में जैसा कि उल्लेख किया गया था, उत्तर प्रदेश भारत के उन दो राज्यों में एक है, जहां "सभी काश्तकारों को राज्य के साथ सीधे सम्पर्क में लाया गया है और पूरी सुरक्षा दी गई है।" 1954 और 1955 में तथाकथित स्वैच्छिक सुपुर्दगी के कुछ मामले भदोही में हुए थे, जो पुराने बनारस राज्य का एक भाग है और

अब वाराणसी जिले में मिल चुका है। तब से ऐसा कोई मामला सामने नहीं आया है।

सद्भावनाओं सहित

(हस्ताक्षर)

श्री जवाहरलाल नेहरू सम्पूर्णानन्द
प्रधानमंत्री
नई दिल्ली

जैसा कि असावधान पाठक भी लक्ष्य करेंगे, मुख्यमंत्री का यह स्वीकार करना कि 1954 या 1955 में भदोही में 'तथाकथित सुपुर्दगी के कुछ मामले हुए थे', तथ्य की दृष्टि से गलत था।

7

कमजोर और पिछड़े वर्गों को भूमि सुधारों से लाभ

पिछड़ा वर्ग सम्मेलन हालांकि सभी पार्टियों के कार्यकर्ताओं के लिए खुला था, मगर उसके तेवर कांग्रेस-विरोधी नहीं थे, उसमें दरअसल कांग्रेसियों का बोलबाला था। फिर धीरे-धीरे शोषित संघ की, जो ज्यादातर वंचित वर्गों के विक्षुब्ध युवा लोगों का संगठन था, उसमें प्रमुखता होने पर उसके आर्थिक और राजनीतिक क्षितिजों का व्यापक विस्तार हुआ। लेकिन सामाजिक सोपान के निचले डंडों पर स्थित लोगों के खिलाफ प्रभुता-सम्पन्न या ऊंची जाति के हिन्दुओं का पूर्वाग्रह उस स्थिति तक पहुंच चुका था कि जब चरण सिंह ने जून 1956 में फैजाबाद जिले के गोसाईगंज में होने वाले पिछड़े वर्गों के राज्यस्तरीय सम्मेलन की बैठक में भाग लेने का फैसला किया, तो प्रदेश कांग्रेस कमेटी के तत्कालीन अध्यक्ष श्री मुनीशर दत्त उपाध्याय ने उनके लिए उस सम्मेलन में नहीं भाग लेने का लिखित आदेश जारी कर दिया। फिर भी उन्होंने उस सम्मेलन में भाग लिया और अध्यक्ष को लिखा कि अगर उनका यह कदम अनुशासनहीनता का द्योतक या किसी भी तरह जनहित या कांग्रेस हित के विरुद्ध किया गया आचरण साबित हो पाए, तो वे अनुशासनात्मक कार्रवाई को झेलने के लिए तैयार हैं। अंततः श्री उपाध्याय की समझ में आ गया कि बहादुरी दिखाने से बेहतर है विवेक से काम लेना और उन्होंने उस अधिसूचना पर जोर नहीं दिया जो उन्होंने जारी की थी।

बड़े अचरज की बात है कि भूमि सम्बन्धी समस्या के बारे में चरण सिंह की जो समझ थी, उसके प्रति उनका जो रुख था, उसे तीन निर्दोष स्रोतों से पुष्टि मिली, जैसे जनगणना रिपोर्ट 1951, और जैसा कि पाठक आगामी पृष्ठों पर नई दिल्ली से निकलने वाले दैनिक इंडियन एक्सप्रेस और पेट्रियाट को उनके संवाददाताओं द्वारा 1981 में प्रेषित दो संवादों में देखेंगे।

जनगणना रिपोर्ट 1951 चरणसिंह के रुख का दो तरह से समर्थन करती है : प्रथम नीचे दी गई तालिका-7.1 दर्शाती है कि उत्तर प्रदेश में प्रत्येक 100 कृषिकर्मियों (बिना मजदूरी लिए काम करने वाले पारिवारिक सदस्यों सहित) में किसानों के परिवारों के कृषिकर्मियों और खेत मजदूरों के परिवारों के कृषिकर्मियों का अनुपात 1931 के 82 : 18 से बदलकर 1951 में 90 : 10 हो गया।

तालिका 7.1

	संख्या लाखों में		
	1931	1951	वृद्धि + कमी —
कृषि कर्मियों की कुल संख्या (बिना मजदूरी वाले पारिवारिक सहायक सहित) :			
[I] खेतिहर किसान	141	179	+38
[II] खेतिहर मजदूर	31	20	—11
	172	199	+27

नोट : भारतीय जनगणना, 1952 का दस्तावेज I (अंतिम जनसंख्या तालिकाएं) के अनुसार पूरे देश में खेतिहरों के साथ मजदूरों का अनुपात वर्ष 1951 में 27 : 100 (बाद के आंकड़े में 1.0 से 1.25 प्रतिशत खदानों में कार्यरत मजदूर शामिल) था।

स्रोत : द सेंसस रिपोर्ट आफ इंडिया, 1951 खंड-1 भाग-1 बी, पृष्ठ 210

अब ऊपर की तालिका-7.1 में निहित खेतिहरों और खेतिहर मजदूरों के इस अनुपात की व्याख्या जरूरी है। उत्तर प्रदेश के सेंसस आपरेशन के सुपरिटेंडेंट द्वारा इस सम्बन्ध में भारत के पदेन जनसंख्या आयुक्त को पेश की गई रिपोर्ट के अनुसार राज्य में खेतिहर मजदूरों की संख्या में 1931 के मुकाबले 1951 में कमी हो जाने के पीछे यह तथ्य जिम्मेवार है कि "बहुत से लोग जिन्हें कल तक महज मजदूर कहा जाता था, बावजूद इसके कि वे जमींदार की सीर या खुदकाश्त जमीनें जोत रहे थे, वे ही अब विधायी और प्रशासनिक उपायों के फलस्वरूप अपनी जोत की जमीन के काश्तकार के रूप में अपने नाम दर्ज करा पाने में कामयाब हुए।" उन्होंने आगे "मध्यवर्ती मैंदानी प्रभाग में खेतिहर मजदूरों की संख्या में उल्लेखनीय गिरावट" का जिक्र करते हुए कहा कि यह "इस तथ्य के चलते हुई कि भूमि सुधार कानून की बदौलत बहुत से भूतपूर्व मजदूर तालुकेदारी वाले जिलों में काश्तकार बन गए थे।" इसमें यह जोड़ा जा सकता है कि उत्तर

प्रदेश सेंसस आपरेशन के सुपरिटेंडेंट ने जिन "विधायी और प्रशासनिक उपायों" का जिक्र किया था, उन्हें 1946 में ही कांग्रेस के सत्ता में आने के तुरन्त बाद पांच-साला अवधि में अपनाया गया था।

दूसरे, सेंसस रिपोर्ट 1951 जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून से हरिजनों को हुए लाभों की व्याख्या इस प्रकार करती है: भाग-II, खंड I-ए में दी गई तालिका यानी संख्या 383 के अनुसार उत्तर प्रदेश में सामान्य आबादी की तुलना में अनुसूचित जातियों की आजीविका ढांचा निम्न प्रकार है:

तालिका 7.2

आजीविका वर्ग	आबादी सामान्य	आबादी अनुसूचित जाति
सारे वर्ग	1000	1000
सारे कृषक वर्ग	742	785
पूर्णतः या मुख्यतः स्वामित्व वाली जमीन के किसान और उनके आश्रित	623	525
पूर्णतः या मुख्यतः बिना स्वामित्व वाली जमीन के किसान और उनके आश्रित	51	84
खेतिहर मजदूर और उनके आश्रित	57	172
खेती नहीं करने वाले भू-स्वामी खेती का लगान पाने वाले, और उनके आश्रित	11	4
गैर कृषि वर्ग (आश्रितों समेत)	258	215

स्रोत : द सेंसस रिपोर्ट आफ इंडिया, 1951, भाग-II खंड I-ए।

भूमि अगर पुश्तैनी दखलकारी के अधिकार के साथ किसी काश्तकारी के अन्तर्गत जोत में थी, तो वह 'स्वामित्व प्राप्त' समझी गई, भले ही किसी और को देने का अधिकार उसमें निहित नहीं रहा हो। किसी और तरह की काश्तकारी वाली भूमि को 'स्वामित्वरहित' माना गया ताकि सारे अधिवासी काश्तकार-जोतदारों के आजीविका वर्ग-II के अन्तर्गत आ सकें।

अब, उत्तर प्रदेश के राजस्व रिकार्डों में फसली साल 1352 (30 जून 1947 को समाप्ति) के दौरान दर्ज खुदकाश्त वाले काश्तकारों, शिकमी काश्तकारों के साथ-साथ लगान-मुक्त अनुग्राहियों और रियायती दर से निर्धारित लगान

चुकाने वाले अनुग्राहियों तथा बाकायदा अनुमति प्राप्त किए बिना खेती कर रहे जोतदारों अर्थात वे सारे जोतदार जिनका भूमि पर कब्जा बहुत कुछ भूस्वामी की मर्जी और सहूलियत पर निर्भर था तथा जिनके नाम खतौनी के भाग-II में दर्ज किए गए थे। उनकी संख्या 41 लाख 20 हजार थी और 36 लाख 60 हजार एकड़ भूमि पर उनका दखल था (जमींदारी उन्मूलन समिति की रिपोर्ट, 1948 के भाग-II का वक्तव्य-6 देखें)। फिर भी चूंकि उपर्युक्त व्यक्तियों की गणना एकाधिक बार हुई थी और क्योंकि विभिन्न पट्टादाताओं और भूस्वामियों के एक से अधिक भूखंड उनके पास थे, इसलिए इन जोतदारों की संख्या उससे काफी कम थी जो ऊपर दिए गए आंकड़े बताते हैं—राजस्व के कागजात में दर्ज उनकी संख्या 41,21,400 से 2/5 कम हो सकती है।

जमींदारी उन्मूलन समिति की रिपोर्ट 1948 में दिखाई गई स्वामित्वरहित जोतों के जोतदारों की यह संख्या फिर भी सिर्फ उन्हीं क्षेत्रों से सम्बन्ध रखती है जहां जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून बुनियादी तौर पर लागू किया गया था। इस संख्या में रामपुर, बनारस की रियासतों, कासवर राज परगना, दूधी क्षेत्र, विलयित इलाकों और अन्य सरकारी भूसम्पत्तियों के साथ-साथ अल्मोड़ा और गढ़वाल जिलों और कुमायूं डिवीजन के नैनीताल जिले की पहाड़ी पट्टियों में पड़ने वाली जोतों की संख्या भी जरूर जोड़ी जानी चाहिए। इन क्षेत्रों के जोतदारों की संख्या आसानी से 50 हजार से अधिक मानी जा सकती है, जिसे मिलाने पर कुल संख्या लगभग 50 लाख होगी। इस हिसाब में बहुत से ऐसे जोतदारों की संख्या भी जोड़ी जानी है, जिनके नाम बाद में 1952-54 के दौरान छेड़े गए भूमि-रिकार्डों में 'भूल सुधार अभियान' के फलस्वरूप राजस्व रिकार्डों में दर्ज किए गए थे।

जमींदारी उन्मूलन समिति की रिपोर्ट के भाग-II के पृष्ठ 8 पर दी गई तालिका-6 (खतौनी, भाग-II) में गिनाए गए जोतदारों के अलावा जोतदारों के दो और वर्ग, हरिजन और गैर-हरिजन दोनों, भी थे जिनकी जमीनें पहले दी गई तालिका के आजीविका वर्ग-II की परिभाषा के अन्तर्गत आती थीं, अर्थात (क) राजस्व के खातों में दर्ज गैर-दखली काश्तकार जिनकी संख्या 2,29,000 थी और वर्ष 1945-46 के दौरान जिनके अधीन कुल 2,35,000 एकड़ का क्षेत्र पड़ता था, तथा साथ ही (ख) वे भी जिनके नाम 1950 में दर्ज नहीं थे, जो जनगणना के आंकड़ों से सम्बद्ध थे, मगर बाद में जिन्हें अधिवासियों के अधिकार में समाविष्ट कर लिया गया। जाहिर है कि इन काश्तकारों की जोतों की संख्या, जो अवश्य ही ध्यान देने योग्य है, ऊपर दी गई संख्या 41 लाख 20 हजार के बाहर है।

हो सकता है कुछ आलोचक यह तर्क उछालें कि राजस्व खाते के मुताबिक

चूंकि औसत अधिवासी के पास सिर्फ हर एकड़ का दसवां हिस्सा है और चूंकि यह रकबा एक परिवार के गुजर-बसर के लिए नाकाफी है, इसलिए यह सुधार या उपाय व्यवहारतः किसी काम का नहीं। लेकिन, ऐसा है नहीं, क्योंकि इसके दो काफी अच्छे कारण हैं, जैसे, प्रथम, इस तरह से दर्ज हर अधिवासी के पास दो या अधिक जोतें हैं जिनसे प्रति परिवार का औसत दो एकड़ या ऐसा ही कुछ हो जाता है। दूसरे, श्री श्रीकांत आप्टे के सूरत (गुजरात) से तीन मील दूर रांदेर स्थित चौथाई एकड़ के फार्म के नीचे दिए गए उदाहरण से—जिसे हालांकि अन्तिम बिंदु का मामला समझा जा सकता है—स्पष्ट होगा कि एक एकड़ अच्छी जमीन लगातार मेहनत मिलने पर एक परिवार को रोटी-कपड़ा देने में समर्थ हो सकती है। हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली के एक सम्बाददाता ने 29 जनवरी 1957 के अंक में इस प्रकार लिखा :

वह अपने जीवन की सारी जरूरतें—खाना और कपड़ा—पूरी करने के लिए अपने भूखंड पर खेती इस ढंग से करता है कि सालाना 400 रुपये की बचत भी हो जाती है। वह अपनी जमीन पर औसतन प्रतिदिन चार घंटे हाथ के औजारों से (बिना बैलों के) काम करता है, सिंचाई के लिए डेढ़ मील दूर की नदी से पानी सिर पर ढोकर लाता है। जिस खाद का वह उपयोग करता है, वह उसके अपने ही मल-मूत्र और उसकी बकरियों की लीद से उपलब्ध होती है, जिनके लिए चारा खेत के बाड़े की क्रमिक कटाई-छंटाई से मिल जाता है। बकरियों के लिए चारा जुटाने के क्रम में एक चक्र पूरा करने में छः सप्ताह लगते हैं और इस बीच कटाई-छटाई का अगला चक्र शुरू करने के लिए बाड़ा तैयार हो जाता है।

श्रीकांत पिछले पांच साल तक इसी तरह अपने खेत में काम करता रहा और अब मानो आधुनिक कृषि-उत्पादों के मामले में पीछे नहीं रहने की धुन में नयी कृषि तकनीकों और कृत्रिम खाद का प्रयोग करते हुए वह अपने खेत में बड़े-बड़े आकार की उत्कृष्ट सब्जियां उगाने लगा है। कभी तीन फुट से चार इंच कम लम्बी गाजर आपने देखी है? अगर नहीं तो रांदेर में आप्टे के खेत पर चले जाइए। सिर्फ विशालकाय गाजर ही नहीं, दैत्याकार मूलियां (प्रत्येक का वजन 5 पौंड) और शुतुरमुर्ग के अंडे जितने बड़े एक-एक पौंड वजन वाले प्याज भी आपको वहां मिलेंगे।

कपास आप्टे की नकदी फसल है। वह सिर्फ 20 पौधे लगाता है जो डेढ़ से पौने दो मन तक रुई देते हैं। लगभग 10 सेर से उसकी निजी जरूरत पूरी होती है, बाकी को वह बेच डालता है, जैसे कि अपनी फालतू सब्जियां बेच देता है। इसी तरह वह सालाना 400 रुपये अतिरिक्त कमा लेता है जिनसे अपने गांव में वह एक बालमंदिर और एक पुस्तकालय चलाता है।

श्रीकांत आप्टे अपने खेत में साल भर में सिर्फ नौ महीने काम करता है। आचार्य विनोबा भावे ने उससे अपनी तकनीक का प्रचार करने के लिए कहा है, जिसके बारे में आप्टे का दावा है कि उसे अपनाना 'हर आदमी के लिए सम्भव' है। आचार्य विनोबा ने इसे 'भूदान की व्यावहारिक किताब की भूमिका' कहा है।

फिर, 1956 से, जिस वर्ष से श्री आप्टे के फार्म के आंकड़े सम्बन्ध रखते हैं, कृषि के क्षेत्र में महान तकनीकी प्रगति हुई है, जैसा कि जापान और अन्य देशों के उदाहरण बताते हैं एक एकड़ से आज उसका दो गुना उत्पादन मिल सकता है जितना 20 साल पहले मिलता था।

'इंडियन एक्सप्रेस' के नवम्बर 1981 के अंक में प्रकाशित नीरज राय के 'इन यू० पी० डकैत्स डेन : गवर्नमैंट पर्सक्युटिंग द यादवास' (उत्तर प्रदेश में डकैतों के अड्डे पर : सरकार द्वारा यादवों का उत्पीड़न) शीर्षक लेख में कहा गया है :

> लम्बे समय से यह वास्तविकता रही है कि इस राज्य में ऊंची जाति के लोग समृद्ध रहे हैं और रुपया-पैसा ब्राह्मणों और ठाकुरों के पास रहा है। राज्य में भूमि सुधार लागू होने पर यादव,* जो पिछड़े हुए थे, साठ** वाले दशक के आखिरी वर्षों में छोटी-छोटी जोतें हासिल करने लगे।
>
> यादवों की समृद्धि के फलस्वरूप मैनपुरी के बहुत से क्षेत्रों में कई ब्राह्मण अपनी जमीनें बेचकर अन्य ऐसे क्षेत्रों में जा बसे हैं जहां उनकी अपनी ही बिरादरी के लोग ज्यादा संख्या में रहते हैं।

नीचे पैट्रियट, नई दिल्ली के 27 नवम्बर 1981 के अंक में प्रकाशित सलाहुद्दीन उस्मान के लेख का एक अंश दिया जा रहा है :

> जमींदारी उन्मूलन के समय इस क्षेत्र में जमींदार आम तौर पर ऊंची जातियों के लोग थे। फिर हमारे 'ठाकुर या 'ब्राह्मण' डकैत थे जिन्होंने भूमि के प्रतिद्वन्द्वी दावेदार की हत्या करके बन्दूक और बीहड़ दर्रे चुन लिए थे। जमींदारी उन्मूलन के बाद जमीन वास्तविक खेतिहर वर्गों, यादवों और केवटों, के हाथ में चली गई तो यादव और केवट गिरोहों का उदय हुआ। ठाकुर अब भी थे, मगर अपनी भूसम्पत्तियों और बड़ी-बड़ी जोतें खोकर पीछे की तरफ खिसक गए। फिर भी, अपना अस्तित्व उन्होंने खो नहीं दिया। उनमें सन्तोष और

---

* उत्तर प्रदेश में अनुसूचित जातियों को छोड़कर पिछड़े वर्गों में यादवों का समुदाय बहुसंख्यक है।

** 'पचास' को 'साठ' बताना चूक है।

राधे जैसे छोटे डकैत थे, जिन्होंने देवली हत्याकांड को अंजाम दिया था।

दोनों संवाददाताओं ने अपनी-अपनी रिपोर्टों में जो कुछ कहा है, उससे कोई सहमत हो या नहीं हो, मगर एक बात साफ है। राज्य सरकार द्वारा भूमि सुधारों के उपाय किए जाने के फलस्वरूप पिछड़े वर्ग अब समाज में दोयम दर्जे की भूमिका निभाने को तैयार नहीं हैं। कोई भी उन्हें 'छोटी जात' या 'नीची जात' का कहकर बुला नहीं सकता, जैसा कि तथाकथित ऊंची जातियों के लोग, खास तौर से उत्तर प्रदेश के पूर्वी हिस्सों में, कहा करते थे।

8

जोतों की चकबंदी

मुख्य रूप से भूमि पर पड़ते दबाव, हमारे उत्तराधिकार के कानूनों तथा पुराकालीन गांव के बड़े बुजुर्गों की आकांक्षा के चलते, जबकि मनुष्य ने प्रकृति पर आज जैसी विजय नहीं हासिल की थी और इसी कारण सिंचाई के साधन और कृषि की अन्य सुविधाएं प्राप्त करने में असमर्थ था, तब कुछ किसानों के पास सारी अच्छी जमीन न चली जाए और दूसरों के पास घटिया जमीन ही न रह जाए या सारी जमीन पर एक ही तरह की फसल न उगाई जाने लगे, इसे रोकने के लिए गांव की सारी कृषि योग्य भूमि छोटे-छोटे खेतों में बंटती गई और आज भी बंटी और बिखरी हुई है। इस तरह की प्रणाली में असुविधाएं इतनी ज्यादा हैं कि कृषि अर्थनीति के विशेषज्ञों ने एक स्वामी के बिखरे खेतों को एक ही भूखंड में चकबंदी करने या किसी भी तरह भूखंडों की संख्या कम करने को कृषि विकास की दिशा में पहला कदम माना है। भूमि की चकबंदी के परिणाम स्वरूप कृषि उत्पादन के तीनों तत्त्वों—भूमि, पूंजी और श्रम—की उत्पादकता में बढ़त होती है।

सिंचाई और जल की निकासी पर नियंत्रण रखना इससे आसान होगा और फलस्वरूप भूमि का बेहतर उपयोग होगा। अभी तो खेत इस तरह जहां-तहां बिखरे हुए हैं कि किसी किसान के लिए अक्सर खेत में कुआं खोदना तक सस्ता नहीं पड़ता और बहुत सारे किसानों के लिए यह आसान नहीं होता कि वे मिल-जुलकर कुआं खोद लें और और उसका इस्तेमाल करें। राज्य द्वारा जहां नहर और ट्यूबवैल से सिंचाई की सुविधाएं उपलब्ध की गई हैं, वहां भी खेत छोटे-छोटे और इधर-उधर बिखरे होने के परिणामस्वरूप पानी की बहुत बरबादी होती है। किसी के भी बहुत सारे खेतों तक लम्बे-लम्बे नालों के जरिये पानी पहुंचाना पड़ता है।

चकबंदी मेंड़ों की संख्या को घटाएगी और इस तरह जमीन की बचत

करेगी। फिर, जमीन अगर एक जगह होगी तो चोरों और जानवरों आदि का अतिक्रमण रोकने के लिए उसे बाड़ आदि से घेरा जा सकेगा। कृतंकों और टिड्डियों जैसे कीटों तथा बीमारियों पर काबू पाना तब कम मुश्किल होगा। इस तरह जमीन जो कुछ भी पैदा करती है, उसकी बेहतर देखभाल और सुरक्षा हो पाएगी।

सीमा-रेखा को लेकर, सिंचाई और जल-निकासी के अधिकार को लेकर तथा भूमि के खातों में हुई चूकों के—जो एक ही व्यक्ति की जोत में अनेक छोटे-छोटे खेतों के रहने पर हो सकती हैं—चलते उठने वाले सारे विवाद लगभग खत्म हो जायेंगे और इस तरह मुकदमेबाजी और उस पर होने वाली पैसे की बर्बादी बीते युग की बात रह जायेगी। बैलों का, जो भारतीय किसान की मुख्य पूंजी है, बेहतर उपयोग हो सकेगा; क्योंकि आज एक छोटे खेत से दूसरे छोटे-छोटे खेतों तक उन्हें हांक कर ले जाने में जो समय की बरबादी होती है, उसे बचा लिया जाएगा।

मानव-श्रम भी अधिक सक्षम ढंग से लगाया जा सकेगा। बैलों को हांक कर एक खेत से दूसरे खेत तक ले जाने में समय सिर्फ बैलों का नहीं बल्कि स्वयं किसान का भी नष्ट होता है। उत्तर प्रदेश में बस्ती जिले की एक तहसील डुमरियागंज में औसतन एक किसान के पास तीस खेत (भूखंड) थे, जिनका कुल रकबा मुश्किल से 3.5 एकड़ हो पाता था। इसका मतलब है कि औसतन एक खेत का रकबा 500 वर्ग गज या इसी के आस-पास था। जब इन तीस खेतों को मिलाकर दो या तीन बड़े खेतों में बदल दिया गया, तब आज तक जो मानव-श्रम बरबाद होता रहा और जिसे अब बचा लिया गया है, उसकी सिर्फ कल्पना की जा सकती है।

चकबंदी के बाद किसान को खेती के सारे औजार अपने चक या जोत पर ले जाने होंगे, जहां वह एक या कई मकान और पशुओं के बांधने रहने की जगह बनवा लेगा, भूसा और दूसरे चारे जमा करके रखेगा, गड्ढे में खाद इकट्ठी करेगा, दांवनी के लिए जगह सुरक्षित रखेगा और गन्ने का रस निकालने के लिए साधरण-सा कोल्हू बैठा लेगा। वहीं से वह अपनी उस जमीन पर खेती के कामकाज करेगा जो अब उसके आस-पास ही और उसकी पहुंच के भीतर है। उसकी जमीन, उसका पैसा या जो भी पूंजी वह खेती में लगा पाने में समर्थ है, उसका तथा उसके बैलों का श्रम—सबका बेहतर उपयोग और दोहन हो पाएगा। वह पहले से कहीं ज्यादा निगरानी रख पाएगा। जो खेती इन स्थितियों में होगी वह इंग्लैंड और दूसरे देशों की आवासीय क्षेत्र वाली खेती की तरह होगी और उपज कहीं ज्यादा देगी।

दरअसल, जोतों की चकबंदी एक ऐसी स्थिति है जो ग्रामीण क्षेत्र के सभी

या किसी भी विकास के पहले आती है। जमींदारी प्रथा के उन्मूलन, राज्य-भर में सामान्य और एकरूप भू-काश्तकारी के प्रवेश तथा अधिवासियों की समस्या के समाधान ने सुधार के रास्ते प्रशस्त कर दिये हैं।

उत्तर प्रदेश की सरकार ने 1953 में जोत चकबंदी कानून बनाया और जो उसके अगले साल अमल में आया। सरकार ने समय बरबाद किये बिना आवश्यक पूर्णकालिक कर्मचारियों की भर्ती की और उन्हें प्रशिक्षित किया।

पांच स्तरीय—हर निचला स्तर तुरन्त बाद के उच्चतर स्तर की प्रत्यक्ष निगरानी में—कर्मचारीवृन्द उपलब्ध किये गए, जिनके लिए सम्बन्धित गांव में या आस-पास ही कहीं निवास करना जरूरी था। हर गांव में चकबंदी समितियां नियुक्त की गईं, जो गांव पंचायत की उपसमितियां थीं। चकबंदी कर्मचारियों को कदम-कदम पर इन समितियों के साथ सलाह-मशविरा करना था। जिला स्तर पर चकबंदी के लिए कलक्टर की अध्यक्षता में एक जिला सलाहकार समिति भी थी। इसके सदस्य अन्य लोगों के अलावा विधान सभा के क्षेत्रीय प्रतिनिधि और सैटलमेंट अधिकारी थे।

उत्तर प्रदेश के योजना सलाहकार सर अलबर्ट मायर ने विकास आयुक्त, उत्तर प्रदेश को अपने 3 सितम्बर 1955 के पत्र में चकबंदी की कार्यवाहियों के बारे में अपनी भावना को इस प्रकार व्यक्त किया :

> "खेतों की चकबंदी का प्रयास जारी देखकर मुझे लगता है कि एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण और लगभग क्रांतिकारी कार्य सम्पन्न किया जा रहा है, और जैसा कि उन्नाव में मैंने लक्ष्य किया, कर्मचारीगण अच्छा काम कर रहे हैं, खास तौर से यह गौर करते हुए कि उनमें से कितने ही नये रंगरूट हैं।"

फिर भी, यह उनका और उत्तर प्रदेश के किसान वर्ग का दुर्भाग्य था कि चकबंदी योजना का जोरदार विरोध हुआ, न केवल सोशलिस्ट पार्टी के सदस्यों द्वारा बल्कि चरण सिंह के कुछ अपने सहयोगियों द्वारा भी। उनका आरोप था कि यह लोकप्रिय नहीं हुई और कांग्रेस सरकार के नाम पर इससे बट्टा लग गया। अतः अप्रैल 1956 में उनके इस्तीफा देने के एक सप्ताह के भीतर ही डा० सम्पूर्णानन्द की अध्यक्षता वाली राज्य सरकार ने राजस्व विभाग में उनके उत्तराधिकारी ठाकुर हुकुम सिंह का यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया कि इस योजना का संचालन स्थगित कर दिया जाए। एक महीने के भीतर ही इस फैसले को रद्द करना पड़ा था क्योंकि किसान हाय-तौबा मचाने लगे थे और राष्ट्रीय योजना आयोग ने इस योजना को फिर से चालू करने का आग्रह किया था। फिर भी यह अनेक में से एक उदाहरण है जो चरण सिंह के सहयोगियों की समस्याओं को या जनता के प्रति उनकी चिन्ता को समझने के लिए एक टिप्पणी का काम

करता है। आज निर्विवाद रूप से यह माना जाता है कि जोतों की चकबंदी राज्य के किसानों के लिए एक महान वरदान रही है।

दूसरे मुद्दे पर जाने से पहले यह उल्लेख प्रासंगिक होगा कि राजस्व मंत्री द्वारा सार्वजनिक दायित्व के रूप में जो योजनाएं और उपाय अमल में लाए गए उनमें जोतों की चकबंदी में भ्रष्टाचार की गुंजाइश सबसे ज्यादा थी। बहुत से भू-स्वामियों के पास अलग-अलग तरह की जमीन होना और अपने उन भूखंडों से लगाव रखना —ये भ्रष्टाचार के प्रमुख कारक हैं। ये दोनों ही तत्त्व चकबंदी कर्मचारियों को नाजायज लाभ कमाने के पर्याप्त अवसर देते हैं। लेकिन चरण सिंह की जैसी कि आदत थी, उन्होंने योजना के इस पहलू पर कड़ी चौकसी बरती। विपक्ष ने भी विधान सभा में इस तथ्य को स्वीकार किया।

किसानों की आर्थिक स्थिति पर भू-जोतों की चकबंदी के लाभकारी प्रभाव का पता अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के कृषि विशेषज्ञ वुल्फ लैंडजिस्की की उन टिप्पणियों से चलता है, जो उन्होंने फोर्ड फाउण्डेशन के सामने रखी थीं। इस फाउण्डेशन ने भारत के हर राज्य के एक-एक जिले में आई. ए. डी. पी. (इन्टेन्सिव एग्रीकल्चरल डवलपमेंट प्रोग्राम) के लिए धन जुटाया था। उत्तर प्रदेश में जिला अलीगढ़ को चुना गया था।

एक और तथ्य है जिसे कार्यक्रम के अनुकूलन के लिए काम करना चाहिए, एक ऐसी अनुकूलता जिससे अलीगढ़ के सभी किसान लाभ उठा सकें। हमारा संकेत कृषि सुधार के एक अन्य पहलू की ओर है, यानी अलीगढ़ में भूमि की चकबंदी का जोरदार और कामयाब कार्यक्रम। यह काम इस जिले में 1955 में शुरू हुआ। कोई भी यात्री इसकी उपस्थिति से अनजान नहीं रह सकता, और हमने जो कुछ देखा है, उससे इस जानकारी पर सवाल नहीं उठ सकता कि गांवों में 75 प्रतिशत काम पूरा हो चुका है। यह काम 1963-64 की ग्रीष्मकालीन फसल तक पूरा हो जाना है। जिन गांवों में यह काम दो वर्ष पहले पूरा हो गया था, वहां इस कार्यक्रम का असर हमारे लिए बिल्कुल साफ था। इसके सबसे महत्त्वपूर्ण परिणाम का पता उन नये कुओं से चलता है, जो किसान अपनी चकबंद जमीन पर बनाते जा रहे हैं। एक गांव में इस कार्यक्रम के पूरा होने पर 28 कुएं बनाये जा चुके थे। वे कुएं 1200 से 2000 रुपये तक की लागत होने के कारण महंगे हैं और अपर्याप्त ऋण तथा ईंटों और सीमेंट की अपर्याप्त आपूर्ति की समस्या नहीं रहे तो जल्द आने वाले वर्षों में ही अलीगढ़ उनसे अघा जाएगा। फिलहाल, अलीगढ़ के 500,000 सिंचित एकड़ में से 200,000 एकड़ को पानी सतही कुओं से ही मिलता है। किसान के लिए यह 'अनुभूत आवश्यकता' है और यह एक इस प्रकार की सिंचाई है जिस पर उसका अपना नियंत्रण है। निम्नांकित प्रश्न और उत्तर इसका निचोड़ हैं; क्योंकि किसान के लिए पानी और खास तौर से उसके

अपने कुएं का पानी जो अर्थ रखता है वैसा कुछ और नहीं रखता। हमने कहा, "मान लें कि हम आपको 1500 रुपये देते हैं। उन्हें आप अपनी बेटी के विवाहा पर खर्च करेंगे या कुएं की खुदाई पर।" किसान ने उत्तर दिया, "मैं एक कुआं खोद लूंगा। मेरे खेत में कुआं होगा तो मुझे अपनी बेटी के लिए वर नहीं ढूंढन पड़ेगा, वही खुद उसे ढूंढ लेगा।"

9

केरल की स्थिति के साथ तुलना

उत्तर प्रदेश में जिन भूमि सुधार के उपायों को अमली रूप पचास वाले दशक के मध्य में दिया गया, वह अपने चरित्र में केरल के कम्युनिस्ट मंत्रिमंडल द्वारा स्थापित 1957 के एग्रेरियन रिलेशंस बिल के मुकाबले कहीं ज्यादा क्रांतिकारी और दूरगामी थे। उत्तर प्रदेश के राजस्व सचिवालय द्वारा तैयार किए गए नोट से इस बात का खुलासा हो जाएगा, जिसमें केरल बिल, जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून का तुलनात्मक अध्ययन किया गया था। इस नोट को सरकारी फाइल में रखा गया था। चरण सिंह इस नोट के आधार पर अखबारों के लिए लेख लिखना चाहते थे, लेकिन समयाभाव के चलते वैसा नहीं कर पाये। नोट नीचे दिया जा रहा है।

केरल एग्रेरियन रिलेशंस बिल और उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार कानून 1950 का तुलनात्मक अध्ययन

राजस्व (अ) फाइल सं. 2174/57

केरल में जमींदारी को उन्मूलित करना प्रस्तावित नहीं है। इसका सबूत बिल अपने आप ही दे देता है कि इसका नाम एग्रेरियन रिलेशंस बिल है। बिना जोती हुई भूमि अभी भी जमींदारों के हाथ में रहेगी और उसे ग्राम समुदाय को नहीं सौंपा जाएगा जैसा कि उत्तर प्रदेश में किया गया है। रैंय्यत, जिन्हें क्रय-मूल्य चुकाना है, फिर भी रैंय्यत ही रहेंगे। बहुत-से स्थायी काश्तकार और ज्यादातर अधीनस्थ काश्तकार इस प्रकार बिल में निहित लाभों से वंचित रहेंगे।

2. केरल में सार्वजनिक, धार्मिक या धर्मार्थ न्यासों के काश्तकारों को अपने कब्जे की भूमि को खरीदने का अधिकार नहीं दिया गया है। लेकिन उत्तर प्रदेश में स्थिति वैसी नहीं है। यहां ऊपर उल्लेखित संस्थाओं के

काश्तकारों को भी भूमि सुधारों के लाभ दिए गए हैं। ऐसी संस्थाओं के हितों की सुरक्षा की दृष्टि से राज्य सरकार ने उनके लिए वार्षिक अनुदान मंजूर किए हैं और ऊपर से उन्हें उसी दर से मुआवजा चुकाने का प्रावधान रखा है, जिसके लिए निजी भू-स्वामी या जमींदार अधिकृत हैं।

3. केरल में अधिकतम दर पर निर्धारित उचित लगान का 16 गुना क्रय-मूल्य तय किया गया है। यह दर सचमुच बहुत ऊंची है, जबकि इसकी तुलना हम लगान के 10 गुना से करते हैं, जो कि उत्तर प्रदेश में भूमिधारी के अधिकार प्राप्त करने के लिए अपेक्षित क्रय मूल्य है।

4. केरल बिल के अध्याय III के तहत सरकार को सौंपी गई फालतू जमीन लैंड बोर्ड द्वारा ऐसे व्यक्तियों को देने का प्रस्ताव है, जिनके पास कोई जमीन नहीं है या हदबंदी सीमा की अपेक्षा कम जमीन है। इस तरह जिन लोगों को भूमि आबंटित की जाएगी, उनके लिए बोर्ड को उसका मूल्य चुकाना लाजिमी होगा। इस सम्बन्ध में बोर्ड के अनुच्छेद 70 में उल्लेखित प्राथमिकता क्रम का ध्यान रखना होगा। भूमिहीन खेतिहर मजदूर उस सूची में चौथे नंबर पर हैं। केरल बिल के ये प्रावधान दिखाते हैं कि भूमिहीन मजदूरों तक के लिए, जो हमारे समाज के सबसे कमजोर तबके हैं, उन्हें दी जा रही भूमि का पूरा मूल्य चुकाना जरूरी होगा। उत्तर प्रदेश में भूमिहीन खेतिहर मजदूर, प्राथमिकता सूची में न सिर्फ दूसरे नंबर पर हैं बल्कि जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून 1950 के तहत उन्हें आबंटित भूमि का कोई अधिमूल्य चुकाना भी उनके लिए जरूरी नहीं होगा। यह स्पष्ट है कि केरल में जिन भूमिहीन व्यक्तियों के लाभ के लिए हदबंदी लगायी गई है, वे इस योजना का पूरा लाभ उठा पाने में समर्थ नहीं होंगे।

5. उत्तर प्रदेश में पुनर्ग्रहण का कोई अधिकार नहीं दिया गया है, जबकि केरल के जमींदार अस्थायी काश्तकारों से जमीन के पुनर्ग्रहण का अधिकार रखते हैं—ऐसे रैय्यतों से, जिनका अप्रैल 1957 में पिछले पांच वर्षों से जमीन पर लगातार कब्जा नहीं रहा। जिन रैय्यतों ने अनाज के रूप में लगान चुकाया लेकिन खेत या खेतों पर अप्रैल 1957 में पिछले दस वर्षों से कम अवधि तक ही लगातार कब्जा रहा, उनके लिए भी काश्तकारी निश्चित नहीं की गई।

6. एग्रेरियन रिलेशंस बिल के तहत गठित किए गए न्यायाधिकरण भूमि के लगान निश्चित करने के लिए अधिकृत हैं—कृषि उत्पादन के एक चौथाई की दर से, अगर सिंचाई की सुविधा सार्वजनिक या राज्य के स्रोत से जुटाई गई हो और उत्पाद के 1/6 से 1/12 तक की दर से अगर सिंचाई की सुविधा किसी निजी स्रोत से उपलब्ध की गई हो। शुष्क जमीनों के लिए

लगान उत्पाद के 1/16 की दर से तय किया जाएगा। अब ये दरें उत्तर प्रदेश में किसानों द्वारा चुकाई जाने वाली दरों की अपेक्षा कहीं ज्यादा ऊंची हैं। किसी भी मामले में मौजूदा बाजार-दरों से विनिमय कृषि उत्पाद के 1/20 से ज्यादा लगान उत्तर प्रदेश में नहीं है। उत्तर प्रदेश में लगान चौथे दशक में निश्चित किए गए थे, यानी बीस साल से भी ज्यादा पहले, जबकि देश आर्थिक मंदी के दौर से गुजर रहा था।

7. उत्तर प्रदेश में विकलांग व्यक्तियों को छोड़कर किसी भी तरह की शिकमी बटाईदारी पर पूरा प्रतिबंध है। केरल में भी ऐसा लगता है कि बिल के अनुच्छेद 32 के तहत जोतदार काश्तकारों द्वारा बटाई लगाने पर पाबंदी लगा दी गई है, लेकिन हकीकत यह है कि उत्तर प्रदेश की तरह वहां जोतदार काश्तकारों द्वारा भोगाधिकार के साथ बंधक लगाने पर कोई रोक नहीं होने से, यह पाबंदी व्यर्थ ही जा सकती है और किसी दूसरे रूप में ही सही, शिकमी बटाईदारी जारी रहेगी। यह जमींदार-रैंय्यत की प्रथा को फिर से जन्म दे सकती है।

8. केरल में सिर्फ स्थायी काश्तकार अपनी आवास भूमियों के अधिकारों का हस्तांतरण कर सकते हैं। दूसरी तरह के काश्तकार कानूनन वैसा नहीं कर सकते। उत्तर प्रदेश में उत्तराधिकार और हस्तांतरण के अधिकार सभी व्यक्तियों को दिए गए हैं, जहां तक कि गांव की आबादियों में उनके द्वारा निर्मित घरों का सम्बन्ध है।*

जबकि उत्तर प्रदेश के भूमि सुधार उपाय इतने क्रांतिकारी थे कि वाराणसी के कम्युनिस्ट श्री उदल और बांदा जिले के बबेरू के समाजवादी विधायक श्री जागेश्वर यादव जैसे विपक्षी सदस्यों तक ने अपने-अपने निर्वाचन क्षेत्रों की सभाओं में इन उपायों के बारे में भाषण देने के लिए चरण सिंह को आमंत्रित किया।

चरण सिंह ने उन महानुभावों को साफ-साफ बताया कि उनके भाषण कुल मिलाकर राजनीतिक रूप से उन्हें कमजोर करेंगे और कांग्रेस को मजबूत बनायेंगे। इस पर उनकी प्रतिक्रिया थी कि राजनीतिक लाभ या हानि उन्हें चाहे जो हो, इन सभाओं का कम से कम यह असर तो होगा ही कि दलित जनता

---

* पाठक जैसा कि गौर कर चुके हैं कि ऐसे दोषपूर्ण उपाय का नतीजा है केरल में खेतिहर मजदूरों और जोतदारों का अनुपात, जो 1960 के 92 : 100 से बढ़कर 1970 में 172 : 100 हो गया—देश भर में दोनों समय-बिंदुओं पर उच्चतम, छोटे और हाशिये पर के जिन किसानों को अपनी जोतों से निकाल बाहर किया गया, वे खेतिहर मजदूरों की जमात में जा मिले।

को रोशनी मिलेगी और वह अपने पैरों पर खड़ी हो सकेगी। चरण सिंह ने श्री जोगेश्वर यादव का आमंत्रण तो स्वीकार किया, श्री, उदल की इच्छा पूरी नहीं कर पाये, क्योंकि उन्हें डर था कि इससे डा. संपूर्णानन्द और पंडित त्रिपाठी जैसे अपने मंत्रि-मंडलीय सहयोगियों के मन में कहीं कभी न दूर होने वाली गलतफहमी न पैदा हो जाए।

चरण सिंह की भूमि सुधार सम्बन्धी नीतियों ने हालांकि सीधे कांग्रेस कर्मियों के उस लक्ष्य को पूरा किया था जिसकी घोषणा वे अंग्रेजी हुकूमत के समय से ही जोरदार ढंग से करते आ रहे थे और इस तरह जनता का दिल जीत कर कांग्रेस को मजबूती प्रदान की थी, फिर भी प्रदेश कांग्रेस कमेटी और बनारस, गोंडा, बहराईच, बाराबंकी, लखनऊ, बरेली और हमीरपुर की जिला कांग्रेस ने, जिनमें ऐसे लोग काफी थे जिनकी दलितों के प्रति बहुत या बिल्कुल ही सहानुभूति नहीं थी, चरण सिंह की इस पहल का उपयोग नहीं किया कि लोगों को जा-जाकर यह बताने का अभियान चलाते कि उनकी राहत के लिए सरकार ने क्या-क्या उपाय किये। वे लोग या तो उदासीन थे या विरोधी भाव रखते थे। उनके कुछ सहयोगियों ने तो बजाय इसके कि उनका फूलों-गुलदस्तों से स्वागत करते, जिसके कि वे अधिकारी थे, उन पर ईंट-पत्थर बरसाए।

यही नहीं कुछ जिला कांग्रेस कमेटियां और कुछ चोटी के कांग्रेस कर्मी, उन भूमि सुधारों के प्रति उदासीन थे जो उनकी अपनी ही सरकार की देन थे, बल्कि जब भी चरण सिंह गरीब किसानों के नेताओं और प्रतिनिधियों द्वारा सार्वजनिक सभाओं में जमींदारी उन्मूलन कानून के लाभकारी प्रावधानों के बारे में भाषण करने के लिए बुलाए जाते, चाहे वह इलाहाबाद, कानपुर, गाजीपुर या किसी और जगह की हो, तब प्रमुख स्थानीय कांग्रेस कर्मी उनकी आलोचना किया करते थे और उनके अपने मंत्रिमंडलीय सहयोगी ही उन लोगों को उकसाते रहते थे।

10

पर्वतीय क्षेत्रों में जमींदारी प्रथा कैसे समाप्त हुई

अब हम कुमायूं चलें, किसी को भी न केवल दु:ख ही होगा बल्कि बड़े दर्द से पंडित पंत की पावन स्मृति की बात करेगा, जिनके दिल में वैसे तो गरीबों के लिए इतनी सहानुभूति थी और ग्रामीणों की, खास तौर से किसानों की दिक्कतों और समस्याओं की ऐसी समझ थी कि उनके समर्थन के बिना उत्तर प्रदेश में भूमि सुधार के उपायों को—जो अचूक और क्रांतिकारी थे—विधि-पुस्तिका में स्थान मिल ही नहीं पाता; मगर वही कुमायूं के उनकी मर्जी पर आश्रित काश्तकारों को जिन्हें 'सीरतान' कहा जाता था और जो क्षेत्र के कृषक समाज में 11 प्रतिशत थे, स्थायी अधिकार (सीरदारी) दिए जाने के पक्ष में नहीं थे। उन काश्तकारों में कम-से-कम आधे काश्तकार (शिल्पकार कहलाने वाले) तो पर्वतीय अनुसूचित जातियों से संबंध रखते थे। कारण कुछ भी रहा हो, पंतजी अपने लखनऊ वाले कार्यकाल के दौरान कुमायूं क्षेत्र में भूमि सुधारों को लागू करने के लिए ज्यादा उत्सुक नहीं थे। यह तो उनके दिल्ली चले जाने के बाद (31 दिसम्बर 1954) हुआ कि चरण सिंह कुमायूं में जमींदारी उन्मूलन के लिए एक विधेयक विधान सभा में पेश कर पाये।

उपर्युक्त विधेयक जिस समय (ठीक-ठीक समय अभी निश्चित नहीं कर पाता) विधान सभा में पेश किया गया था, उस समय चरण सिंह उसके हर अनुच्छेद की तह में नहीं जा पाये थे। जैसे ही वे समय निकाल पाये, उन्होंने विधेयक पर बारीकी से गौर किया और राजस्व सचिव को सम्बोधित 19 मई 1956 के नोट में अपनी प्रतिक्रियाएं इस प्रकार व्यक्त कीं :—

राजस्व सचिव

1. नैनीताल जाते हुए (वाया मेरठ) मैं कुमायूं जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार विधेयक के अनुच्छेदों को गौर से पढ़ पाया, जिसे विधान सभा में पेश किया जा चुका है। उसके उद्देश्यों और कारणों के वक्तव्य को देखकर मैं जैसे

हैरान रह गया था। लगता है मैंने बगैर ध्यान दिये जोश में आकर उस पर दस्तखत किया था। वक्तव्य जैसा जिस रूप में है, उससे गलत फहमी पैदा हो सकती है और उस क्षेत्र के हिस्सेदारों और बुद्धिजीवियों के रवैये को देखते हुए आग में घी डालने का काम कर सकता है। अत: मैं चाहूंगा कि वक्तव्य के दूसरे अनुच्छेद का मसौदा फिर से इस प्रकार तैयार किया जाए :

2. इस विधेयक की प्रमुख विशेषताएं हैं :

(1) 'खैलकारी' जमीनों के मामले में हिस्सेदारों के अधिकार उनकी लगान की आय के 12 गुना के बराबर मुआवजा चुका कर अधिग्रहीत किए जाएंगे। निजी जंगलों का अधिग्रहण नहीं किया जाएगा और उनके स्वामियों का स्वामित्व उन पर आज की तरह ही बना रहेगा।

(2) ऐसा समझा जायेगा कि हिस्सेदारों और खैलकारों की वास्तविक कब्जे की भूमि उन्हें भूमिधर के रूप में तथा सीरतानों की भूमि उन्हें असामी के रूप में बन्दोबस्त कर दी गई है। मतलब यह है कि आगे से कुमायूं के काश्तकार-जोतदार भी उन्हीं नामों से जाने जाएंगे जिनसे मैदानी भागों में जाने जाते हैं।

(3) भूमिधरों को 2.5 'नाली' तक भूमि पुर्नगृहीत करने का अधिकार होगा जो कि उसके घर के साथ लगी और किसी असामी द्वारा जोती जा रही हो सकती है।

(4) कानून से सम्बद्ध भाग के लागू होने के एक वर्ष की अवधि के भीतर असामी अपनी जोत की जमीनों पर भूमिधारी के अधिकार, उसके द्वारा चुकाये जाने वाले लगान का 15 गुना चुका कर खरीदने को स्वतन्त्र होगा, बशर्ते उसका भूमिधर ऐसे अधिकार बेचने को राजी हो। खरीदने वाले को वही भू-राजस्व चुकाना होगा जो बेचने वाला चुका रहा था।

(5) ऊपर बतायी गयी अवधि के बीत जाने पर राज्य सरकार एक अधिसूचना जारी कर लगान के बारह गुना के बराबर मुआवजे का भुगतान कर असामियों द्वारा जोती जा रही जमीनों पर से उन भूमिधरों के अधिकारों का अधिग्रहण करेगी, जो अपंगता के शिकार हैं या संघीय सैन्य बलों में सेवारत नहीं हैं। इस अधिसूचना के जारी होने पर ऐसा समझा जाएगा कि असामियों की सीरदार के रूप में बन्दोबस्ती हो चुकी है। मैदानी भागों की तरह ये सीरदार अपने लगान का दस गुना चुका कर भूमिधारी के अधिकार हासिल कर सकेंगे। ऐसे भूमिधरों का भूराजस्व उस लगान का आधा होगा जो वे असामी या सीरदार के रूप में चुका रहे थे।

(6) भूमि प्रबंधन, उत्तराधिकार आदि के बारे में उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून 1950 के प्रावधान उसके अपनाये जाने

और अपेक्षित संशोधन के बाद उस क्षेत्र पर लागू होंगे।

सचिव कृपया वक्तव्य को मुद्रित करा लें तथा एक प्रति संशोधित प्रति के साथ विधान सभा के सदस्यों को भेज दें। अगर सचिव सहमत नहीं है तो वह कल सुबह मुझसे मेरठ के सर्किट हाउस में फोन से सम्पर्क कर सकते हैं।

(हस्ताक्षर)
चरण सिंह
19 मई 1956

कुमायूं में भूमि सुधारों के सवाल पर चर्चा के विचार से पंतजी ने चरण सिंह को तीन बार बुला भेजा, लेकिन दो अवसरों पर उन्होंने अपने मन की बात जाहिर नहीं होने दी। यह तो तीसरा अवसर था जब उन्होंने कहा कि कुमायूं में जोतें इतनी छोटी-छोटी हैं कि हिस्सेदारों के (पर्वतीय क्षेत्रों में जमींदार इसी नाम से जाने जाते थे) अधिकारों को खत्म किया जाना और सीरतानों को स्थायी अधिकार प्रदान किया जाना कतई जरूरी नहीं। चरण सिंह ने विनम्रतापूर्वक असहमति जतायी। उन्होंने पंतजी से कहा कि मैदानों के अधिवासियों के मामले में जो तर्क दिए जाते हैं, वे समान रूप से पर्वतीय क्षेत्रों के सीरतानों के मामले में भी लागू होते हैं तथा उनके नजरिए को मंजूर किए जाने पर तो उनकी बदनामी होगी।

इस बीच जो विधेयक विधान सभा में पेश किया जा चुका था, वह 1957 के आम चुनाव के चलते रद्द हो गया था और उसके बाद दूसरा विधेयक प्रस्तुत करना पड़ा था। यह उल्लेख यहां अप्रासंगिक नहीं होगा कि देश में तब तक कहीं भी पर्वतीय क्षेत्रों में जमींदारी को समाप्त करने और भूमि सुधार लागू करने के प्रयास नहीं हुए थे। फिर भी विधेयक को प्रवर समिति को सौंपे जाने के प्रस्ताव पर बहस के दौरान श्री जगमोहन सिंह नेगी ने, जो उस समय उपमंत्री थे और पर्वतीय क्षेत्र के गढ़वाल जिले से आते थे तथा श्री नारायणदत्त तिवारी ने भी जो विधान सभा में विपक्षी प्रजा समाजवादी दल के नेता थे, उसके सुधारात्मक प्रावधानों के विरोध में जोरदार भाषण दिए। प्रवर समिति में श्री नारायणदत्त तिवारी (आजकल उत्तर प्रदेश के मंत्री) प्रस्ताव को आगे बढ़ाने के बजाए यह सुझाव लेकर आए कि विधेयक को मध्यस्थता के लिए पं० गोविन्दबल्लभ पंत को सौंप दिया जाए। इस प्रयास के पीछे जो कारण था, वह स्पष्ट था। मगर चरण सिंह ने इस आधार पर इसे मानने से इंकार किया कि प्रवर समिति उत्तर प्रदेश विधायिका की समिति या उपज है तथा वही इस सुझाव को मंजूर करे और इस तरह अपना दायित्व किसी बाहरी सत्ता को सौंप दें। प्रवर समिति ने रिपोर्ट वैसी ही दी जैसा राजस्व मंत्री चाहते थे। यह उल्लेख करना यहां अप्रासंगिक नहीं

होगा कि कुमायूं के शोषितों का पक्षधर होने के इस रवैये ने पंतजी को उनसे बहुत दूर कर दिया। पंडित पंत के साथ उनके इस अलगाव ने और इसके साथ ही सहकारी कृषि के सवाल को लेकर चरण सिंह पर पंडित नेहरू की नाराजगी ने व्यक्तिगत तौर पर राजस्व मंत्री को तथा राज्य में भविष्य के राजनीतिक घटनाक्रम को बुरी तरह प्रभावित किया।